शोधादर्श

६६

अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भगवान महावीर

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
		श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - २२६ ००४, टेलीफोन सं. (०५२२) २४५१३७५

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्व है

शोधादर्श -६६

वीर निर्वाण संवत् २५३६ **मार्च, २०१० ई.**

विषय क्रम

१. सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	४
२. गुरुगुण-कीर्तन : गद्यकार श्री दौलतराम कासलीवाल	श्री रमा कान्त जैन	५-८
३. मंगल श्लोक	श्री अजित प्रसाद जैन	८
४. अपरिग्रह विमर्श	डॉ० ज्योति प्रसाद जैन	९-११
५. जनगणना २०११ और जैन समाज	डॉ० शशि कान्त	१२-१३
६. तमिल संघोत्तरकाल में जैन काव्य	डॉ. एन. सुन्दरम	१४-१६
७. तमिलनाडु में प्राचीन जैन अवशेष	कु. मेहा जैन	१७
८. जैन संस्कृति में नारी की स्थिति	डॉ. (श्रीमती) मीनाक्षी जैन डागा	१८-२१

६. जैन संस्कृति का प्रतीक : स्वस्तिक	डॉ० (श्रीमती) संगीता दिलीप मेहता	२२-२७
१०. राजस्थान में जैन धर्म की प्राचीनता	वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन पांड्या	२८-३१
११. उत्तम क्षमा के अनोखे प्रयोग	डॉ. स्वयंप्रभा पि. पाटील	३२-३७
१२. चैतन्य विस्तार (पद्य)	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	३८
१३. रूपनगर की बाट में (पद्य)	डॉ० गणेशदत्त सारस्वत	३९
१४. श्री कृष्ण (पद्य)	श्री अजित कुमार वर्मा	४०
१५. पाप-मूल ही क्रोध है (पद्य)	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	४१
१६. समाज चेतना : कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान	श्री नलिन कान्त जैन.	४२-४५
१७. जिज्ञासा : श्रावकोचित आचार क्या हो	श्री धनेन्द्र कुमार जैन	४६
१८. जन्म जयन्ती पर स्मरण	श्री नलिन कान्त जैन	
श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन		४७
इतिहास-मनीषी डॉ० ज्योति प्रसाद जैन		४७-४८
१९. 'अजातशत्रु' थे मनीषी रमा कान्त जैन	श्री रविमोहन त्रिवेदी	४९-५१
२०. साहित्य सत्कार -	डॉ० शशि कान्त	५२-६१

The Glorious Heritage of India;
Victory over Violence; The Future of India;
श्रीमदनिरुद्धायनम्; श्रद्धा के सुमन;
वैशाली के गणनायक महावीर; अध्यात्मयोग विद्या; भाषालोके नैनागिरि;
जैन विरासत; आप पूछें हम बतायें; जैन न्याय-दर्शन प्रवेशिका;
घर-घर चर्चा रहे ज्ञान की; Jinagama Pravesa;
दो कदम लक्ष्य की ओर; डॉ. चंचलमल चोरडिया;
कविवर राजमल जी पवैया; पं. पवन कुमार जैन 'दीवान';
सुन्दरम सौरभम्; श्री जितेन्द्र कुमार जैन; प्राकृत तीर्थ; प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार

२१. समाचार विविधा : ६२-६६

प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली;
'पंकज' जन्म शताब्दी वर्ष;
दिगम्बर जैन महासमिति का राष्ट्रीय अधिवेशन;
लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद;
सन्मति ट्रस्ट;
श्री स्याद्वाद महाविद्यालय

२२. अभिनन्दन ६७

२३. शोक संवेदन - श्रद्धांजलि ६८-७०

२४. आभार ७०

२५. पाठकों के पत्र : श्री रमा कान्त जैन के प्रति भावांजलि ७१-७६

श्री ऊँ पारदर्शी; श्री जयप्रकाश जैन; श्री दर्शन लाड;
श्री पदमचन्द जैन सर्राफ; डॉ० परमानन्द जड़िया;
श्री प्रकाशचन्द्र जैन 'दास'; श्री प्रेमकुमार जैन;
श्री बिशम्भरदयाल अग्रवाल; श्री मदनमोहन वर्मा,
श्री महेश नारायण सक्सेना; श्री मोतीलाल 'विजय';
श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'; श्री राजकुमार यादव;
डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल ;
डॉ० विदुषी भारद्वाज; श्री वेदप्रकाश गर्ग;
डॉ० शैलनाथ चतुर्वेदी; श्री साहू शैलेन्द्र कुमार जैन

२६. शोधादर्श के आजीवन अभिदाता ७७-७८

२७. शोधादर्श के वार्षिक अभिदाता वर्ष- २००६ ७९-८०

सम्पादकीय

शोधादर्श ६८ का सुधी पाठकों द्वारा स्वागत किया गया, इससे मेरा और सम्पादक मण्डल के मेरे सहयोगियों का मनोबल बढ़ा है। आदरणीय श्री रमा कान्त जैन द्वारा प्रारम्भ की गई परम्परा के अनुसरण में पत्रिका के मुख पृष्ठ पर किसी भव्य स्मारक का चित्र और अधिक आकर्षक रूप में देने का प्रयास इस अंक में किया जा रहा है। २८ मार्च को भगवान महावीर की जन्म जयन्ती के उपलक्ष में अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी का बहुरंगी चित्र दिया जा रहा है और अन्दर भगवान महावीर की प्रतिमा का चित्र भी दिया जा रहा है। चित्रों के माध्यम से भगवान महावीर के प्रति हमारी श्रद्धांजलि अर्पित है।

श्रद्धेय इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन और श्री अजित प्रसाद जैन के विचार भी समाहित किये गये हैं। गुरुगुण-कीर्तन इस अंक में श्री रमा कान्त जैन की लेखनी से प्रसूत एक लेख के रूप में है। साहित्य-सत्कार का स्तम्भ इस अंक में जोड़ दिया गया है।

शोधादर्श में जैन धर्म, दर्शन, इतिहास और साहित्य के विभिन्न पक्षों पर चिन्तन उत्प्रेरित करने के लिए सारगर्भित लेख प्रकाशित करने की परम्परा रही है। उसी के अनुसरण में विभिन्न मनीषियों द्वारा प्रस्तुत कुछ लेख इस अंक में सम्मिलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त समाज में चेतना जागृत करने के उद्देश्य से भी कुछ सामग्री दी जाती रही है। उस दृष्टि से भी हमने कुछ चिन्तन इस अंक में प्रस्तुत किया है।

कागज और मुद्रण आदि पर व्यय में इधर अप्रत्याशित वृद्धि हुई है अतः **शोधादर्श** के वार्षिक शुल्क में वृद्धि करना अपरिहार्य हो गया है। इस वर्ष २०१० से वार्षिक शुल्क मात्र रु. ६०/- किया जा रहा है। शुल्क लखनऊ में देय चेक/ड्राफ्ट के माध्यम से ही भेजा जाए जो 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.', के नाम हो। यथसम्भव मनीआर्डर द्वारा शुल्क न भेजा जाए।

पत्र-पत्रिकाओं की केवल एक प्रति ही सम्पादक के नाम भेजी जाए। मनीषी विद्वानों से निवेदन है कि वह अधिकतम टंकित चार पृष्ठों में अपना लेखादि भेजें और इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें क्योंकि प्रकाशित न हो पाने की स्थिति में उन्हें वापस करना सम्भव नहीं हो पाएगा। कृपया अप्रकाशित रचनाएं ही भेजी जाएं।

अन्त में, मै सभी मनीषियों के प्रति जिनके लेखन आदि से यह अंक प्रस्तुत किया जा सका है, और अपने सहयोगियों के प्रति, हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

समिति के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिनका सहयोग निरन्तर प्राप्त रहा है। अधिक श्रेय सुधी पाठकों का है जिन्होंने अपने सन्देशों से हमें प्रोत्साहित किया है।

- नलिन कान्त जैन, सम्पादक

गद्यकार श्री दौलतराम कासलीवाल

हिन्दी के गद्यरूपी शिशु को परिपुष्ट करने का श्रेय जिन महानुभावों को है उन्हीं में गणना है अठारहवीं शताब्दी (संवत् १७४६-१८२६, ईस्वी सन् १६६२-१७७२) में हुए जयपुर समीपस्थ बसवा स्थान के निवासी पं. दौलतराम की भी । कासलीवाल गोत्रीय खण्डेलवाल आनन्दराम के सुत दौलतराम जयपुर राज्य में प्रतिष्ठित राज्य कर्मचारी थे। किसी कारणवश संवत् १७७७ (ई. सन् १७२०) के कुछ पूर्व उनका आगरा आगमन हुआ और वह वहाँ कुछ दिन रहें। उस प्रवास में उन्हें पं. भूधरमल्ल, पं. हेमराज, पं. ऋषभदास जैसे विद्वानों के सत्संग का लाभ मिला और उससे उनके हृदय में धार्मिक रुचि और साहित्य-साधना की प्रवृत्ति सजग हुई। संभवतः आगरा में ही उन्होंने अपनी प्रथम कृति **'पुण्यास्रव कथाकोष'** की रचना आरम्भ की थी जो संवत् १७७७ में पूर्ण हुई थी। इसके अनन्तर वह लगभग ५२ वर्ष, संवत् १८२६ (सन् १७७२ ई.) तक, साहित्य-निर्माण में संलग्न रहे। इस अवधि में उन्होंने लगभग एक दर्जन से अधिक ग्रन्थ लिखे जिनमें अनेक विशालकाय हैं।

रायमल्ल नामक एक धर्मात्मा सज्जन की प्रेरणा से दौलतराम जी ने संस्कृत के **'आदिपुराण', 'पद्मपुराण'** और **'हरिवंशपुराण'** जो पद्य में हैं, की हिन्दी गद्य में, सरल भाषा में वचनिकाएँ लिखीं, जो न केवल हिन्दी-भाषा क्षेत्र में अपितु गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में भी लोकप्रिय हुईं। संवत् १७६५ (ई. सन् १७३८) में उन्होंने **'क्रिया-कोश'** की रचना की और जैसा कि उस ग्रन्थ के रचयिता द्वारा अपने विषय में किये गये उल्लेख से विदित होता है, उस समय वे उदयपुर में राजा जयसिंह के अनुचर और युवराज के मंत्री थे। **वसुनन्दि श्रावकाचार**, योगेन्द्रदेव कृत **'परमात्म प्रकाश'** और **'श्रीपाल चरित्र'** का हिन्दी गद्यानुवाद उनकी अन्य रचनाएँ हैं; तथा पं. टोडरमल्ल द्वारा अधूरी छोड़ी गई **'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय'** की भाषा-टीका को भी उन्होंने पूरा किया था।

यद्यपि अपनी रचनाओं में दौलतरामजी की भूमिका मुख्यतः अनुवादक की ही रही है किन्तु उन्होंने अपने अनुवादों में प्रकरणों का सम्बन्ध ऐसा सुन्दर संजोया है, श्लोकों के भावों को एकसूत्र में पिरोकर कथा के प्रवाह को इस प्रकार गतिशीलता दी है कि वे अनुवाद नहीं प्रत्युत मौलिक रचना प्रतीत होते हैं। उनकी रचनाओं में ध्वनि-योजना, शब्द-योजना, अनुच्छेद-योजना और प्रकरण-योजना का पूर्ण निर्वाह हुआ है। भावानुकूल ध्वनि और वर्णों का संगठन और सार्थक शब्दों का प्रयोग उनके अनुवादों की विशेषता है।

ढूंढार प्रदेश (राजस्थान) के होने के कारण इनके गद्य में ढूंढारी बोली की छाप होना स्वाभाविक है, किन्तु इनकी भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है और उसमें ब्रज भाषा का भी सम्मिश्रण है। साधारण बोलचाल की भाषा के शब्दों का भी उन्होंने खुलकर प्रयोग किया है और प्रतिदिन व्यवहार में आने वाले अरबी-फारसी के शब्दों से भी अपने को विरत नहीं रखा है; यही काण है कि व्याकरण के नियमों का पूर्णरुप से पालन उनकी भाषा में नही हो सका है और कई जगह क्रियापद विकृत करने या तोड़ने-मरोड़ने पड़े हैं तदपि उन्होनें वाक्यों का गठन इस प्रकार से किया है कि उनमें अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नहीं आने पाई है। भाषा की सरलता, स्वच्छता और वाक्यों का गठन उनकी शैली की कमनीयता प्रकट करते हैं।

अठारहवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य का रूप क्या रहा होगा इसकी झाँकी देखने के लिए यहाँ पं. दौलतराम जी की **पद्मपुराण की वचनिका** (चतुर्थ पर्व) से एक उद्धरण, जो उनकी गद्य शैली का परिचायक है, प्रस्तुत है -

"भरत चक्रवर्ती पद कूं प्राप्त भए, अर भरत के भाई सब ही मुनिव्रतधार परम पद को प्राप्त हुए, भरत ने कुछ काल छै खण्ड का राज किया, अयोध्या राजधानी, नवनिधि, चौदह रत्न प्रत्येक की हजार हजार देव सेवा करें, तीन कोटि गाय, एक कोटि हल, चैरासी लाख हाथी, इतने ही गाय, कोटि घोड़े, बत्तीस हजार मुकुटबन्ध राजा अर इतने ही देश महासम्पदा के भरे, छियानवे हजार रानी देवांगना समान, इत्यादि चक्रवर्ती के विभव का कहाँ तक वर्णन करिये। पोदनपुर में दूसरी माता का पुत्र बाहुबली तो भरत की आज्ञा न मानते भए कि हम भी ऋष्भदेव के पुत्र हैं, किसकी आज्ञा माने ? तब भरत बाहुबली पर चढ़े, सेना युद्ध न ठहरा, दोऊ भाई परस्पर युद्ध करे यह ठहरा, तीन युद्ध थापे- १. दृष्टियुद्ध २. जलयुद्ध और ३. मल्लयुद्ध।"

हिन्दी गद्य को हिन्दी-भाषी क्षेत्र में ही नहीं अपितु उसके बाहर भी लोकप्रिय बनाने और उसके विकास-मार्ग को प्रशस्त करने का श्रेय पं. दौलतराम जी को है। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं. नाथूराम प्रेमी, बाबू कामता प्रसाद, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री और डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन आदि हिन्दी साहित्य एवं इतिहास के मनीषियों ने उन्हें अपने समय के एक महान हिन्दी गद्यकार के रूप में स्वीकारा है।

श्री दौलतराम कासलीवाल की अब तक १६ रचनाओं की खोज की जा चुकी है। इन रचनाओं को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं- (i) मौलिक रचनाएं, (ii) अनूदित रचनाएं और (iii) टब्बा टीकाएं।

(i) मौलिक रचनाएं -

१. त्रेपन क्रियाकोश (सं. १७९५)
२. जीवंधर चरित
३. अध्यात्म बारहखड़ी (सं. १७९८)
४. श्रीपाल चरित (सं. १८२२)
५. विवेक विलास (सं. १८२७)
६. श्रेणिकचरित
७. चौतीस दण्डक
८. सिद्ध पूजाष्टक
९. आत्मबत्तीसी

(ii) अनूदित रचनाएं (भाषा वचनिका)

१. पुण्यास्रव कथाकोष (सं. १७७७)
२. पद्मपुराण (सं. १८२३)
३. परमात्मप्रकाश (सं. १८२३)
४. आदिपुराण (सं. १८२४)
५. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
६. हरिवंशपुराण (सं. १८२९)
७. सारसमुच्चय

(iii) टब्बा टीकाएं -

१. तत्वार्थसूत्र टब्बा टीका
२. वसुनन्दि श्रावकाचार टब्बा टीका (सं. १८१८)
३. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टब्बा टीका

डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने **महाकवि दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व** की प्रस्तावना (पृ. ४१-४२) में १८ कृतियों की सूची दी है जिसमें **आत्मबत्तीसी** का उल्लेख नहीं है। यह साहित्य शोध विभाग, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, से ई० सन् १९७३ में प्रकाशित हुआ था।

डॉ. नेमीचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, ने श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् से ई. सन् १९७४ में प्रकाशित **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा,** भाग-४, के पृष्ठ २८२ पर १७ कृतियों की सूची दी है जिसमें **'श्रेणिकचरित'** और

'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टब्बा टीका' का उल्लेख नहीं है तथा कुछ रचनाओं का रचना वर्ष दिया है जो ऊपर निर्दिष्ट है।

समय निर्देश संवत् में है जिसका अभिप्राय ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व प्रवर्तित विक्रम संवत् से है।

- श्री रमा कान्त जैन

[श्री रमा कान्त जैन की कृति 'हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार', (जैनविद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र श्रीमहावीरजी, से १९९५ ई. में प्रकाशित) से साभार उद्धृत और अनुकूलित। - सम्पादक]

मंगल श्लोक

- श्री अजित प्रसाद जैन

श्री कुंदकुंद भारती, नई दिल्ली-६७, द्वारा प्रकाशित **'प्राकृत विद्या'** के जुलाई-दिसम्बर २००३ अंक के पृष्ठ २ पर "आचार्य कुन्दकुन्द का काल निर्णय" लेख के अंत में संस्कृत के सुप्रसिद्ध **मंगल श्लोक** -

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यौ, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

का निम्नलिखित प्राकृत रूप -

मंगलं भगवदो वीरो मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाइ जेण्ह धमोत्थु मंगलं।।

देखने को मिला। इससे भ्रम होता है कि यह **मंगल श्लोक** का संस्कृत के पूर्व का प्राचीन मूलरूप होगा, किन्तु जहाँ तक हमारा सीमित अध्ययन और जानकारी है, यह प्राकृत रूप हमें किसी प्राचीन शास्त्र में देखने को नहीं मिला। **'प्राकृत विद्या'** के सम्पादक जी स्वयं प्राकृत भाषा के विद्वान हैं तथा लगता है कि यह प्राकृत अनुवाद भी उन्हीं का या अन्य किसी आधुनिक विद्वान का किया हुआ है अपितु इसे अनुवाद के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

प्राकृत अब अध्ययन की ही भाषा रह गई है। इसका गहन अध्ययन प्राकृत में रचे गए प्राचीन शास्त्रों के समुचित अध्ययन के लिए आवश्यक है पर यह अब दीर्घकाल से बोलचाल की भाषा नहीं रही है तथा प्राचीन श्लोकों का प्राकृत भाषा में अनुवाद उनके और प्राचीन होने का भ्रम पैदा कर सकता है, जो हमारी दृष्टि में उचित नहीं है। **(शोधादर्श-५३, जुलाई, २००४, पृ. ६६-६७)**

अपरिग्रह विमर्श

- डॉ० ज्योति प्रसाद जैन

जैन परम्परा में अहिंसा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया और उसके पीछे, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण अपरिग्रह को, जो मूल जैन संस्कृति का प्रतीक है, प्रायः भुला दिया गया है, कम से कम अधुना जैन धर्मावलम्बियों के आचार-विचार एवं व्यवहार में ऐसा ही चरितार्थ हो रहा है।

आत्मा की विभाव परिणति स्थूल रूप से हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह रूपी पाँच पाप प्रवृत्तियों के रूप में मुखरित होती है। सप्त-व्यसनादि का सेवन, नानाविध अनाचार, दुराचार, व्यभिचार, शोषण, ईर्ष्या, द्वेष, अनसूया, घृणा, मात्सर्य, वैर, विरोध, उच्छृंखलता आदि उसी के प्रतिफल हैं। इन समस्त कुप्रवृतियों के मूल में प्राणी की वह पर्याय सम्बन्धी दैहिक एवं मौलिक आसक्ति है जो उसे आत्मस्वरूप या आत्मधर्म से विमुख करके बहिमुखी, बहिरातम, परावलम्बी एवं पराधीन बना देती है। इसके विपरीत निर्ग्रन्थ श्रमण या जिन धर्म साधना का प्रधान एवं परम लक्ष्य वीतरागता, समत्व तथा शुद्धात्मोपलब्धि है, जो सच्चे, स्वाधीन, शाश्वत, निराकुल सुख, ब्रह्मानंद या परमात्मानंद का प्रतीक है और इसका अनिवार्य उपाय उपरोक्त पाप प्रवृत्तियों का सम्यक् निरोध है।

ये सभी कुप्रवृतियाँ एक दूसरी की पूरक एवं पोषक हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के भेद से किसी में किसी एक का, किसी में किसी दूसरी का प्राबल्य या आधिक्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अल्पाधिक रूप में प्रायः सभी परस्पर सहयोगिनी हैं और साथ-साथ ही रहती हैं। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति में सच्चे अर्थों में धर्माभिरुचि जागृत हो जाती है तो वह इन पाप प्रवृत्तियों को हेय एवं त्याज्य समझने लगता है, और परिणामस्वरूप उनके निरोध या उच्छेद के लिए प्रयत्नशील भी हो जाता है। यदि वह इन पाँचों में से किसी एक से भी मनसा-वाचा-कर्मणा निवृत्त्व होने का प्रयास करने लगता है तो शनैः शनैः शेष चारों से भी निवृत होने लगता है। पूर्णतया अहिंसक आत्मा में सत्य, अस्तेय, शील या ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की प्रतिष्ठा स्वतः हो जायेगी। इसी प्रकार पूर्णतया अपरिग्रही आत्मा में भी शेष चारों गुण स्वतः प्रकट हो जायेंगे।

परन्तु आज तथाकथित जैनों में, चाहे वे दिगम्बर तेरहपंथी, बीसपंथी, तारणपंथी, कान्हजीपंथी या श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी, स्थानकवासी, तेरापंथी, अथवा कोई अन्य भी हों प्रायः सभी में दिनोंदिन वृद्धिंगत ऐहिक आसक्तियों का मोह-मायाजाल चतुर्दिक दृष्टिगोचर है। कितना ही अध्यात्मवाद छोंकें, कितना ही तत्त्वज्ञान बघारें,

कितने ही शास्त्रज्ञ, क्रियाकांडी या भक्त बनें, आबाल-वृद्ध गृहस्थ स्त्री-पुरुष हों, अथवा साधु-साध्वी आदि किसी भी श्रेणी के त्यागी वर्ग हों, अधिकांश में ऐहिक स्वार्थ, मान, लोभ एवं अहमन्यता का पोषण, आत्मप्रदर्शन, आत्मविज्ञापन, पाखंड और आडम्बर का अतिरेक बहुधा दिखाई पड़ता है। और इस सबका मूल कारण है - धर्मतत्व की या वस्तुस्वरूप की अनभिज्ञता अथवा सही पकड़ न होना, साथ ही साथ, ऐहिक स्वार्थ, मोह-मूर्च्छा, विषयाक्ति, अहंभाव और क्रोध-माया-मान-लोभादि कषायों के पोषण की ललक। सामूहिक रूप से यही मिथ्यात्व है, अधार्मिकता है, नास्तिकता है।

ऐसी मिथ्या मनोवृत्ति का ही प्रताप है कि जीवन भर अपने व्याख्यानों एवं प्रवचनों में अध्यात्मवाद को सर्वोपरि ही नहीं, एकमात्र महत्व देने वाले तथा 'सद्गुरुदेव' उपाधि से विभूषित महानुभाव के निधन के तुरन्त उपरान्त उनकी गद्दी की उत्तराधिकारिणी उनकी प्रिय शिष्या एवं कतिपय अनन्य भक्तों ने उन्हें तीर्थंकर ही घोषित कर दिया, भले ही भावी हो, और सर्वथा कल्पित 'सूर्यकीर्ति' नाम से उनकी प्रतिमाएं भी बनवा डालीं तथा उक्त प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराकर जिन मंदिरों में विराजमान करना भी प्रारम्भ कर दिया।

यह घोर मिथ्यात्व कैसे पनप सका, इसका कारण, हमें तो ऐसा लगता है कि उक्त तथाकथित 'सद्गुरुदेव' जैन अध्यात्म के अपने आविष्कार से इतने अभिभूत हो गये कि वह यह भूल गये कि उस अध्यात्म विद्या को सम्यक्रूप से आत्मसात् करने के लिए सर्वप्रथम चारों अनुयोगों के मूल शास्त्रीय ज्ञान का अवगाहन अत्यावश्यक है। उन्होंने उसकी उपेक्षा की और द्रव्यानुयोग के भी दार्शनिक एवं नैयायिक अंगों को छोड़कर केवल उसके चरमांश अध्यात्म को ही पकड़कर बैठ गये। कर्म सिद्धान्त की सुदृढ़ नींव पर निर्मित जैन सिद्धान्त एवं तत्त्व ज्ञान की सम्यक् पकड़ के बिना निरा अध्यात्मवाद बहुधा प्रमादियों का शब्द-विलास बनकर रह जाता है। मूल सिद्धान्त की वह पकड़ उन्हें होती तो उन्हें स्वयं को तथा उनके अनन्य भक्तों को इस प्रकार की सिद्धान्त विरुद्ध, आगम विरुद्ध, आम्नाय विरुद्ध, पर्यायबुद्धिजन्य, अविवेकपूर्ण कल्पनाओं के लिए अवकाश ही नहीं होता। सुना तो यह भी गया है कि गुरुदेव की सम्पत्ति एवं ट्रस्ट के एक प्रमुख स्तम्भ का यह कहना है कि "हमने दिगम्बरों से उनकी आम्नाय थोड़े ही ली है - हमने तो केवल उनका तत्त्व ज्ञान लिया है।" घोर गुरुडमवादी, पंथवादी तथा परिग्रहवादी मनोवृत्ति के प्रतीक इस कथन पर कोई भी टीका-टिप्पणी अनावश्यक हो जाती है।

एक बार एक जैनेतर मनीषी से, जो अच्छे भगवद्भक्त भी थे, उनके एक मित्र ने पूछा "भक्ति के अमृतसागर को त्यागकर आप वेदान्त के झाड़--झंखाड़ में क्यों घुस पड़े ?" तो उन्होंने उत्तर दिया - "वेदान्त इसीलिए पढ़ रहा हूँ जिससे भक्ति

मार्ग में विश्वास दृढ़ हो जाये।" यह तो एक दृष्टान्त है जो एकांगी अध्ययन-मनन एवं मान्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। वास्तव में, जैसा कि हम पहले भी कई बार संकेत कर चुके हैं, चारों अनुयोग एक दूसरे के पूरक हैं। चारों का ही शुद्धाम्नायानुसारी यथावश्यक सम्यक् अध्ययन-मनन करने से ही दृष्टि समीचीन बन सकती है। निश्चय सम्यक्त्व की बात फिलहाल छोड़ भी दें तो व्यवहार सम्यग्दर्शन, धार्मिक क्षेत्र में समीचीन दृष्टि और सद्-असद् या हेयोपादेय विवेक प्राप्त या जाग्रत करने के लिए वैसा करना एक धार्मिक जन के लिए धर्ममार्ग में अग्रसर होने का प्रथम सोपान है। तभी जो कुछ और जितना बन सके संयम या चारित्र का अभ्यास स्वतः होता जायेगा, और वह भी समीचीन ही होगा।

वस्तुतः जब और जहाँ ऐसा होता है, वहाँ अपरिग्रह महाव्रत के धारी मुनि-आर्यिका आदि नानाविध अन्तरंग एवं बहिरंग परिग्रहों से घिरे दिखाई नहीं पड़ते, वे अपनी मूर्तियाँ निर्माण कराके जिन प्रतिमाओं के साथ प्रतिष्ठित नहीं करवाते, अपनी जयन्तियों के मनवाने, उपलब्धियाँ बटोरने, अभिनन्दन ग्रन्थों या पत्रों को भेंट कराने तथा किसी प्रकार के भी चन्दे-चिट्ठे कराने के चक्कर में नहीं पड़ते। परिग्रह-परिमाण के रूप में व्रत का एकदेश अभ्यास करने वाले गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी सच्चे अर्थों में स्वयं को तथा दूसरों को देखकर अपनी ऐहिक-दैहिक आसक्तियों को उत्तरोत्तर कम करते जाने में प्रयत्नशील होते हैं। ऐसे धार्मिकजनों से ही वीतराग जिनेन्द्र की भक्ति एवं उपासना भी निष्काम अर्थात् फल की वांछा से सर्वथा अछूती भक्ति बन पाती है। तब कतिपय तीर्थक्षेत्रों पर मनौतियों द्वारा सच्चे-देव का अवर्णवाद करने वाले झूठे भक्तों, कुदेव-कुदेवियों की पूजा-उपासना करने वाले अन्ध श्रद्धालुओं, और गंडे-ताबीज, मन्त्र-यन्त्र के लालच में तथाकथित चमत्कारी महाराजों और माताओं की भाव विभोर भक्ति प्रदर्शित करने वाले अन्ध-विश्वासी स्वार्थियों की भीड़ भी कहीं नहीं जुटेगी।

खेद है कि इस तथ्य में किसी की आस्था है, ऐसा लगता नहीं। यह घोर परिग्रहवाद का ही परिणाम है। कहने में हम अपरिग्रह के उपासक और साधक हैं, किन्तु अपनी मनोवृत्ति तथा जीवन व्यवहार में परिग्रहवाद से ओत-प्रोत हैं। तो मूल जैन संस्कृति से तो हमने स्वयं को बहिष्कृत ही किया हुआ है।

(इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ने जैन धर्म के अनुयायियों, विशेष रूप से तथाकथित त्यागीवर्ग, में अपरिग्रह के प्रति उदासीनता अपितु परिग्रह में लिप्तता के परिप्रेक्ष्य में ये विचार १९८० के दशक में व्यक्त किये थे। आज भी ये उतने ही प्रासंगिक हैं।

-सम्पादक)

जनगणना २०११ और जैन समाज

-डॉ शशि कान्त

जैन धर्म अथवा जाति

एक बैठक में चर्चा के दौरान हमें यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि जैन समाज के नेताओं और उनकी प्रतिनिधि संस्थाओं को इस बात की जानकारी भी नहीं है कि जैन धर्म है अथवा जाति। जैन धर्म है, जाति नहीं। जाति अग्रवाल, खण्डेलवाल, ओसवाल, परवार, आदि हैं। धर्म और जाति में भ्रम नहीं किया जाना चाहिए। अतः जनगणकों (Enumerators) को जानकारी देते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि धर्म के कालम में ही जैन लिखाया जाये, जाति के कालम में नहीं। जाति के कालम में अपनी जाति अग्रवाल, खण्डेलवाल, ओसवाल, परवार आदि लिखाई जाये।

अल्पसंख्यक की प्रास्थिति

जैन समाज अल्पसंख्यक की प्रास्थिति का दावा धर्म के आधार पर करता है, जाति के आधार पर नहीं। मुसलमान, इसाई, सिख और बौद्ध भी धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक का दावा प्रस्तुत करते हैं, जाति के आधार पर नहीं।

सनातनधर्मी बहुलसंख्यक हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था रूढ़ और मान्य है। जो जिस जाति से धर्मान्तरित होते हैं वे मुसलमान, इसाई, सिख और बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के बाद भी अपनी जातिगत पहचान बनाये रखते हैं और उसी के आधार पर अनुसूचित जातियों एवं पिछड़ी जातियों के अनुरूप विशेषाधिकार दिये जाने की मांग करते रहते हैं यद्यपि धार्मिक सिद्धांत और परम्परा के अनुसार उनके यहाँ जाति व्यवस्था मान्य नहीं है।

जहां तक जैन धर्मावलम्बियों का सम्बन्ध है, उत्तर भारत में प्रायः सभी वैश्य वर्ण की किसी-न-किसी जाति से सम्बन्धित हैं। नर्मदा नदी से दक्षिण में, महाराष्ट्र और कर्नाटक के प्रदेशों में, बहुत से जैन धर्मावलम्बी पिछड़ी और निचली जातियों से भी हैं। उन प्रदेशों में उन जातियों के आधार से संभवतः उन्हें अन्य पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के समान विशेषाधिकार भी प्राप्त हैं। अतः सभी जैन धर्मावलम्बियों के लिए यह अभीष्ट है कि जाति के कालम में अपनी सही पारिवारिक जाति का उल्लेख करायें।

पंथिक जनगणना

शासन द्वारा लागू जनगणना की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त जैन समाज की प्रतिनिधि संस्थाओं को इस अवसर का लाभ उठाते हुये अपनी पंथिक जनगणना सामाजिक स्तर पर कर लेनी चाहिए। जैनों में दिगम्बर और श्वेताम्बर स्थूल रूप से दो आम्नाय या पंथ हैं। परन्तु इन दोनों ही आम्नायों में विभिन्न पंथ-विभेद भी हैं जैसे कि दिगम्बरों में तेरहपंथी, बीसपंथी, तारणपंथी और कानजीपंथी तथा श्वेताम्बरों में मंदिरमार्गी (यतिपूज्य, श्रीपूज्य), स्थानकवासी और तेरापंथी, आदि। यह कार्य जैनों की सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से किया जाना ही उपयोगी होगा और जैन समुदाय के विभिन्न पंथों के अनुयायियों की सही संख्या ज्ञात हो सकेगी।

२०११ की जनगणना का महत्व

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायों की सभी संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकगण से हमारा यह विनम्र निवेदन है कि वे लोगों को उपर्युक्तानुसार सही मार्गदर्शन देने की कृपा करें ताकि वास्तविक स्थिति की जानकारी उपलब्ध हो। २०११ की जनगणना का विशेष महत्व इसलिए भी है कि इसमें राष्ट्रीय जनसंख्या पंजिका (National Population Register) बनायी जा रही है और प्रत्येक व्यक्ति को एक राष्ट्रीय पहचान संख्या (National Identity Number) भी आवंटित की जायेगी। हमें विश्वास है कि जैन समाज के प्रबुद्ध वर्ग में इस सम्बन्ध में आवश्यक जिज्ञासा जाग्रत होगी और वे सार्थक कार्यवाही निष्पादित करेंगे।

सार्वदेशीय स्तर पर जैन समाज में जातिगत और पंथगत जनगणना का कार्य भारतीय जैन मिलन, दिगम्बर जैन महासमिति, तथा श्वेताम्बर जैन महासभा, अन्य अखिल भारतीय संस्थाओं के साथ मिलकर, सम्पादित कर सकती हैं।

तमिल संघोत्तर काल में जैन काव्य

- डॉ एन. सुन्दरम

तमिल संघोत्तर काल के संबंध में विद्वानों का अनुमान है कि वह ईस्वी की दूसरी शताब्दी का अंतिम चरण था। ईस्वी की दूसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक तमिल में जैन-बौद्ध काव्यों का प्रादुर्भाव हुआ। सारा तमिलनाडु उस समय जैन धर्म से प्रभावित था। उस काल को तमिल का स्वर्ण युग भी कह सकते हैं। तमिल के विद्वान इस काल को काव्य-काल मानते हैं। इस संघोत्तर काल में रचित पाँच सर्वश्रेष्ठ काव्य **पंच बृहद् काव्य** कहलाते हैं। वे हैं **शिलप्पदिकारम, मणिमेखलै, जीवक-चिन्तामणि, वळैयापति** और **कुण्डलकेशि।**

शिलप्पदिकारम के रचयिता इलंगो अड़िकल जैन मुनि थे परन्तु उनके काव्य में सभी धर्मों के प्रति हार्दिक सद्भावना पायी जाती है। यह काव्य कथानक रूढ़ि पर आधारित है। पूर्व जन्म का फल भोगना ही पड़ेगा। यही इस काव्य की वर्ण्य वस्तु है।

मणिमेखलै कथानक की दृष्टि से **शिलप्पदिकारम** का उत्तरार्द्ध है। इसे बौद्ध धर्म का विचार ग्रन्थ माना जाता है लेकिन इसे जैन ग्रन्थ मानना ही समीचीन है।

तीसरा काव्य **जीवक-चिन्तामणि** है। यह जैन मुनि एवं महाकवि तिरुत्तक्कतेवर की अमर रचना है। कुछ लोग इस महाकाव्य का रचनाकाल ईस्वी की नवी शताब्दी मानते हैं। दंत कथा के अनुसार मुनि तिरुत्तक्कतेवर ने यह प्रमाणित करने के लिए इस काव्य की रचना की थी कि जैन मुनि भी श्रृंगार रस से पूरिपूर्ण महाकाव्य रच सकते हैं। उन्होंने एक उत्कर्ष काव्य की रचना की। महामहोपाध्याय स्वामिनाथ अय्यर के अनुसार तिरुत्तक्कतेवर ने **'श्रीपुराण'** में वर्णित जीवक चरित के आधार पर यह काव्य रचा था। कुछ विद्वानों का मत है कि वादीभसिंह नामक जैन कवि के संस्कृत काव्य **'क्षत्रचूड़ामणि'** के आधार पर इसकी रचना हुई। इस महाकाव्य में जीवक नामक राजकुमार की जीवनी उसके जन्म से लेकर सिद्ध लोक की यात्रा तक विशद् रूप में वर्णित है। श्रृंगार रस से ओतप्रोत होने पर भी काव्य में जैन धर्म का प्रचार बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। काव्य नायक कई विवाह करके जीवन के सभी प्रकार के सुखों को भोगने तथा दुखों से जूझने के उपरान्त जीवन की क्षणभंगुरता को समझकर राज्य त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लेता है और सशरीर सिद्ध लोक पहुँच जाता है।

जीवक-चिन्तामणि का महत्व इसमें है कि यह वृत्त छंदों में रचित तमिल महाकाव्य है। कथावस्तु तो संस्कृत से ली गयी है, लेकिन कवि ने अपने समय के तमिल प्रदेश के राजनीतिक, सामाजिक, कलात्मक एवं सांस्कृतिक जीवन का सजीव एवं वास्तविक वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह काव्य अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

तिरुत्तक्कतेवर अपने काव्य में संस्कृत की रचना शैली को अपनाने वाले प्रथम महाकवि थे। अतिशयोक्ति से भरेपूरे होने पर भी तेवर की कविता में एक अद्‌भुत आकर्षण है। उनकी भाषा और रचना शैली ने तमिल काव्य में एक नए युग का निर्माण किया। **जीवक-चिन्तामणि** ३१४५ वृत्त कविताओं का बृहद् काव्य है। इस काव्य में सरयू नदी का वर्णन बहुत ही रोचक है -

"सरयू नदी रूपी कन्या अपने प्रेमी सागर को पहनाने के लिए फेनराशि की वरमाला लिए चली। वन प्रदेश में मतवाले जंगली हाथी की भाँति अप्रतिरोध वेग और प्रचण्डता के साथ बहने वाली बाढ़ जब जनता की बस्तियों से गुजरने लगी तो स्थान-स्थान पर नहरों के निकल जाने के कारण उसका प्रवाह घटता गया।"

जैन धर्म का पुनर्जन्म सिद्धांत, विराग की भावना, जीवक के सन्यासग्रहण के समय के संबंध में निम्नलिखित उक्ति में स्पष्ट है -

"हम पिछले जन्मों में इन लोगों (पुत्र-पत्नियों) के बांधव नहीं थे। भावी जन्मों में भी हम इनके बांधव होने वाले नहीं हैं। इस कारण बांधव जैसी कोई वस्तु वास्तव में नहीं है।"

इसके अतिरिक्त पाँच लघु काव्य भी प्रसिद्ध हैं। उनमें **नीलकेशि** और **उदैयन कदै** प्रसिद्ध हैं। ये पाँचों काव्य जैन कवियों द्वारा रचित हैं। काव्य मर्मज्ञों का मत है कि इनमें काव्योचित लक्षण कम और धर्म-प्रचार अधिक पाया जाता है। तमिल में प्रसिद्ध कथानक रूढ़ियों से संबंधित कथाओं के माध्यम से उस समय के जैनों ने तमिल में धर्म-प्रचार अधिक किया है। यह ध्यान देने की बात है कि इस काल में धार्मिक असहिष्णुता होने पर भी काव्य की दृष्टि में वे जैन धर्म के अनुयायी बन गए थे। जैन धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप जनता में भोगवाद के प्रति प्रतिक्रिया घर कर गई थी। इस प्रतिक्रिया का जैन धर्मावलंबियों ने जनता में खूब प्रचार किया। जो विराग और नैराश्य इस काल में छाया हुआ था उसे जैन धर्म प्रचारकों ने अधिक बढ़ाया।

सूफी सिद्धांत का प्रचार करने के लिए सूफियों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित कहानियों के माध्यम से काव्य रचना की। इनमें प्रमुख हैं जायसी का **पद्मावत,** मज्झन की **मधुमालती** आदि। कथानक रूढ़ियों को सूफियों ने क्यों चुना, यह बड़ा विवादग्रस्त प्रश्न है। इन कहानियों में शिव-पार्वती की कहानी है, फिर भी सूफियों ने इन कहानियों को चुना। कहानी केवल साधन मात्र थी, साध्य तो सूफी धर्म का प्रचार था। ठीक इसी प्रकार जैनाचार्यों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित प्रसिद्ध कथानक रूढ़ियों को अपनाकर तमिल की उत्कृष्ट शैली में काव्य की रचना की। इन जैन मुनियों का लक्ष्य यही रहा कि जैन सिद्धांत का प्रचार हो। उस दृष्टि से **जीवक-चिन्तामणि** तथा अन्य जैन मुनियों की रचनाएँ इस काल में रची गई। इस काल को हम इसलिए काव्य काल कहते हैं कि जैन मुनियों ने संस्कृत रचना शैली को अपनाकर अत्युक्ति एवं अतिशयोक्ति ढंग से काव्य रचनाएँ की हैं। तिरुत्तक्कतेवर की कविता में एक अद्‌भुत आकर्षण है और चिरस्थायी माधुर्य पाया जाता है। शब्दों की संगति से तेवर अवास्तविक को भी वास्तविक बना देते हैं। उनकी भाषा और रचना शैली ने तमिल काव्य में एक नए युग का निर्माण किया। महाकवि कंबन ने भी अपने अद्वितीय काव्य **रामायण** में जैन काव्य **जीवक-चिन्तामणि** की शैली को ज्यों-का-त्यों अपनाया। तिरुत्तक्कतेवर के कई भावों और उपमाओं को कंबन ने निस्संकोच प्रयुक्त किया।

ईस्वी दूसरी शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक के काल को तमिल साहित्य का जैन रचनाकारों का काल कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। इन जैनों ने तमिल भाषा के अनुरूप जैन सिद्धांत को अपनाकर जनता के सामने प्रचार किया। छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक के काल को भक्तिकाल कहते हैं। इन शैव-वैष्णव भक्त कवियों ने जैन सिद्धांत में वर्णित अहिंसा तत्व, पाप-पुण्य संबंधी बातें और जैन धर्म के अन्य तत्वों को अपने धर्म में ले लिया। वास्तव में देखें तो आज का हिन्दू समाज जैनों का एक परिवर्तित रूप ही है। तमिलनाडु में जैनों की देन अद्वितीय रही। इनका साहित्य ऐसा मधुमय संचय है जिसका स्वाद देश और काल की सीमाओं से रहित सार्वभौम अमर वस्तु है। तमिल भाषा और भारतीय साहित्य जैन काल के इन अद्वितीय ग्रन्थों पर गर्व कर सकता है।

– प्लाट नं. १०, बालाजी नगर, प्रथम स्ट्रीट,
विरुगम्बक्कम, चेन्नई-६०००९२

तमिलनाडु में प्राचीन जैन अवशेष

- कु० मेहा जैन

तमिलनाडु में मदुरै से लगभग २० किमी. की दूरी पर मनकुलम ग्राम के पास एक पहाड़ी के ऊपर दो जैन चैत्यगृहों के अवशेष मिले हैं। अनुमान है कि यह तमिल संगम काल के हैं और लगभग २२०० वर्ष प्राचीन हैं। इन्हीं के पास पाँच गुफायें हैं जिनमें फर्श पर चट्टान काट कर शैय्या बनाई गयी हैं। ये शैय्या जैन साधुओं के विश्राम करने के उद्देश्य से बनाई गयी थीं। इन्हीं में से कुछ गुफाओं में तमिल-ब्राह्मी लिपि में अभिलेख भी अंकित हैं जो इस प्रकार के अभिलेखों में प्राचीनतम हैं।

तमिलनाडु के पुरातत्व विभाग द्वारा इन चैत्य-गृहों का २००७ ई. में उत्खनन किया गया था। इस उत्खनन पर उक्त विभाग द्वारा एक पुस्तक भी प्रकाशित की गई है। उत्खनन में बड़े आकार की ईंटें, काले और लाल ठीकरे तथा समकोणीय आकार की लोहे की कीलें प्राप्त हुई थीं।

डॉ. वी. वेदाचलम, सीनियर एपीग्राफिस्ट, का अनुमान है कि ये चैत्यगृह तमिलनाडु में जैनों के सर्वप्राचीन ईंटों से निर्मित स्थापत्य हैं तथा यह कि जो मुनि आस-पास की गुफाओं में निवास करते रहे होंगे वे इन चैत्यगृहों का पूजा-अर्चना के लिए उपयोग करते रहे होंगे।

मीनाक्षीपुरम के पास मनकुलम पहाड़ी पर स्थित गुफाओं के मुहाने पर कुछ अभिलेख १८८२ ई. में राबर्ट सिवेल द्वारा देखे गये थे। इन अभिलेखों को श्री के. वी. सुब्रह्मण्य अइय्यर द्वारा १९२४ में पढ़ा जा सका। श्री अइय्यर के अनुसार ये लेख ब्राह्मी लिपि में हैं और उनकी भाषा तमिल है।

मनकुलम पहाड़ी पर ५ गुफायें हैं। इनमें से चार में ६ लेख उत्कीर्ण हैं। ये सभी लेख ईस्वी पूर्व दूसरी शती के हैं। प्रथम चैत्यगृह के समीपस्थ गुफा के मुहाने पर सबसे बड़ा लेख है जिससे विदित होता है कि पाण्ड्य राजा नेदूचेझियान ने धम्मम् अर्थात् धर्म कार्यों के रूप में जैन मुनि कनि नन्दन के उपयोग के लिए शैय्या बनवाई थीं। एक अन्य अभिलेख में नेदूचेझियान के एक अन्य सम्बन्धी सदिकन ने भी कनि नन्दन के लिए शैय्या बनवाई थीं।

इन अवशेषों से यह विदित होता है कि ईस्वी पूर्व दूसरी शती में पाण्ड्य राजाओं का जैन धर्म के प्रति रुझान था और मीनाक्षीपुरम के समीप यह स्थान जैन धर्म का एक केन्द्र था। यह विवरण The Hindu दिनांक १-१-२००९ में श्री टी.एस. सुब्रह्मन्यन द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट पर आधारित है।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

जैन संस्कृति में नारी की स्थिति

- डॉ० (श्रीमती) मीनाक्षी जैन डागा

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्तेदेवताः" अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है, वहीं देवता रमण करते हैं। यह है भारतीय संस्कृति में नारी का सम्मान एवं गौरव। सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में नारी का माता, पुत्री, बहन एवं पत्नी आदि विभिन्न रूपों में बहुत ही सम्मानजनक स्थान रहा है। जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसकी सहगामी वैदिक अथवा ब्राह्मण संस्कृति सर्वथा पृथक कभी नहीं रह पायी। सामाजिक जीवन में दोनों ही संस्कृतियां एक दूसरे की सहभागी प्रतीत होती हैं। विदेशी संस्कृतियों एवं आक्रान्ताओं से ये बहुत भिन्न हैं। लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में नारी का सर्वोच्च सम्मान जैन धर्म ने विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। यहाँ हम मुख्य रूप से जैन संस्कृति में नारी विकास का ही अवलोकन करेंगे।

ऋषभदेव कालीन युग में नारी को स्वतन्त्र रूप से विकसित और पल्लवित होने की पूर्ण सुविधाएँ प्राप्त थीं। वह पुरुष की अनुगामिनी थी, दासी नहीं। उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व था। समाज का नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण था। उदार ममतामय नारी वैभव एवं सौभाग्य की अधिष्ठात्री थी।

मुस्लिम काल के समान नारी अन्तःपुर में केवल केलि-क्रीड़ा का ही साधन नहीं थी वरन् वह अपने आत्मोत्थान में निरत रहकर अपना आत्मकल्याण करने के लिए भी स्वतन्त्र थी। जीवन का सर्वोच्च अन्तिम लक्ष्य मोक्ष कहा गया है। सर्वप्रथम मोक्ष-गामिनी भी एक नारी ही थी - भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी ।

समाज में कन्या की स्थिति वर्तमान काल की अपेक्षा अच्छी थी। माता-पिता कन्या के जन्म को अभिशाप नहीं मानते थे। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों का पालन पुत्रों के समान ही किया था, अर्थात् पुत्रों एवं पुत्रियों दोनों के लालन-पालन में कोई भेदभाव नहीं रखा था। ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों को उद्‌बोधित किया कि "इस लोक में विद्यावान व्यक्ति पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है। विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है। अतः हे पुत्रियों ! तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो क्योंकि विद्या ग्रहण करने का यही काल है।" इस प्रकार का उपदेश देकर श्रुतदेवता के पूजनपूर्वक स्वर्ण के विस्तृत पट्ट पर वर्णमाला को लिखकर ऋषभदेव ने अपनी कन्याओं को वर्णमाला की शिक्षा दी। उन्होंने अपनी दोनों

पुत्रियों ब्राह्मी एवं सुन्दरी को ७२ कलाओं में निष्णात किया। अस्तु, प्राचीन काल में भारतीय समाज में माता-पिता को केवल कन्या के विवाह की ही चिन्ता नहीं रहती थी, अपितु वे उसे पूर्ण विदुषी और कला प्रवीण बनाते थे, यद्यपि कन्याओं की शिक्षा, पुत्रों की शिक्षा से भिन्न प्रकार की होती थी।

शिक्षा के पश्चात् विवाह के अवसर पर कन्याओं को स्वयं वर-वरण की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। कन्याएं स्वयंवर भूमि में उपस्थित होकर स्वयं वर का चयन करती थीं। विवाह करना आवश्यक भी नहीं माना जाता था। कन्याएं आजीवन अविवाहित रहकर समाज सेवा करते हुए आत्मकल्याण करने के लिए भी स्वतन्त्र थीं जैसा कि ब्राह्मी और सुन्दरी ने किया। लेकिन कन्या का विवाह के पूर्व तक ही अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार होता था।

विवाह के पश्चात् वधु गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर गृहिणी पद को प्राप्त करती थी। विवाहित स्त्री अपने परिवार की सब प्रकार से व्यवस्था करती थी। गृहिणी गृहपति की सेवा-सुश्रुषा तो करती ही थी, उसके कार्यों में भी सहयोग देती थी। उसे घूमने-फिरने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। परिवार में धर्मात्मा और विदुषी गृहिणियों का अधिक सम्मान होता था। स्त्रियों का अपमान समाज में महान् अपराध माना जाता था। पति स्त्री के भरण-पोषण के साथ उसका संरक्षण भी करता था।

माता के रूप में नारी को सर्वाधिक सम्मान मिला है। प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक सदैव नारी वन्दनीय रही है। उसे सन्तान के जन्म, पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का दायित्व सौंपा गया है। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि एक माता अपनी सन्तान के व्यक्तित्व निर्माण में महती भूमिका अदा करती है। भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी की स्तुति में कहा गया है कि जो माता तीर्थंकर और चक्रवर्ती को जन्म देती है, उस माता के महत्व का मूल्यांकन कौन कर सकता है। गृहस्थावस्था में जिस जननी का तीर्थंकर ने पादवन्दन किया है, उसकी पवित्रता वचनातीत है। माता बनने के पूर्व गर्भवती स्त्री का विशेष ध्यान रखा जाता था तथा उसके दोहद को पूर्ण करना प्रत्येक पति का परम कर्तव्य होता था।

प्राचीन काल से ई.पू. चौथी सदी तक समाज में नारी की उन्नत एवं सम्माननीय स्थिति थी। कालान्तर में उत्तरोत्तर सामाजिक परिवेश में परिवर्तन के साथ कुप्रथाएँ प्रचलित होती चली गयीं। रामायण-महाभारत काल में सती प्रथा के प्रचलन के उल्लेख मिलते हैं। धीरे-धीरे बहु विवाह एवं बाल-विवाह प्रचलन में आए। ईसा की १२वीं सदी के पश्चात् विदेशी आक्रमणकारियों से नारी की लज्जा एवं सम्मान के रक्षार्थ पर्दा-प्रथा प्रचलन में आयी जिसने कालान्तर में एक आवश्यक प्रथा का रूप धारण कर लिया।

इससे पहले स्त्रियाँ स्वच्छन्द थीं। सह-शिक्षा का वातावरण था। वधुओं को अभ्यागतों के समक्ष लाना सम्मानजनक माना जाता था।

समाज में विधवा नारियों की स्थिति कभी भी अधिक अच्छी नहीं रही । पुत्रवती स्त्रियाँ पुत्रों के संरक्षण में अपना जीवन व्यतीत करती थीं। सामान्यतया विधवा को अनाथ एवं बलहीन समझा जाता था। विधवाएँ अपना जीवन व्रत-उपवास एवं धर्म-साधना में लगकर आत्म-कल्याण में प्रवृत्त होकर व्यतीत करती थीं।

कालगणना के विकास के साथ समाज में नारी की स्थिति विविध कुप्रथाओं के पल्लवित होने से उत्तरोत्तर हीन होती चली गई। ऐसे सामाजिक परिवेश में भी जैन धर्म ने नारी को पुरुष के बराबर सम्मान एवं अधिकार दिए। जहाँ भगवान बुद्ध ने संशय की स्थिति के उपरान्त ५ वर्ष बाद नारी को दीक्षित किया, वहीं भगवान महावीर ने कैवल्य प्राप्ति के बाद जब गौतम को दीक्षित किया तभी चन्दना को भी दीक्षित कर श्रमणी संघ की प्रवर्तिनी नियुक्त किया, श्राविकाओं के लिए समान १२ व्रतों का विधान किया तथा पूर्व के अन्य तीर्थंकरों की तरह ही भगवान महावीर ने भी चतुर्विध संघ की स्थापना की - उनके संघ में १४०० साधु व ३६००० साध्वियां तथा १,५६,००० श्रावक एवं ३,१८,००० श्राविकाएँ थीं।

इस प्रकार मात्र जैन धर्म एक ऐसा धर्म था जिसने नारी को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया और उसे मोक्ष की अधिकारिणी माना। नारी भी सिद्ध गति को प्राप्त कर सकती है, यहाँ तक कि श्वेताम्बर परम्परा में नारी तीर्थंकर पद को भी प्राप्त कर सकती है जैसे कि मल्लिकुमारी ने तीर्थंकर पद को प्राप्त किया था - पुरुष तीर्थंकरों के समान ही मल्लि ने दीक्षा ग्रहण की थी तथा अन्य तीर्थंकरों के समान ही मल्लि का चतुर्विध संघ था जिसमें २८ गणधर, ४० हजार श्रमण, ५५ हजार साध्वियाँ, १ लाख ८४ हजार श्रावक तथा ३ लाख ६५ हजार श्राविकाएँ थीं।

जैन धर्म में जहाँ नारी को पुरुष के समान अधिकार दिए गए हैं वहीं अनेक ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ उसकी निन्दा भी की गई है और उसे मोक्ष मार्ग में बाधक माना गया है। नारी को स्वभावतः चंचल, कपटी, क्रोधी और माया-चारिणी बताते हुए पुरुषों को उनसे सावधान रहने का उपदेश दिया गया है - नारी मोह से छुटकारा पाने पर ही व्यक्ति का कल्याण हो सकता है।

जैन संस्कृति में नारी निन्दा के इन प्रसंगों का सम्यक् दृष्टि से अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी की यह आलोचना लोकोत्तर दृष्टि से की गई है। यह श्रमणों को मोक्ष मार्ग पर चलने तथा आध्यात्मिक साधना में स्थिर रखने के लिए है। साथ ही साध्वियों के लिए आध्यात्मिक साधना हेतु पुरुषों से दूर रहने का विधान

है। अतः यह धर्म साधना की माँग है कि स्त्री और पुरुष पृथक-पृथक रहें, तभी वे अपने को मोह माया से बचा सकते हैं।

वस्तुतः पुरुष की साधना भंग होने में स्त्री अकेली दोषी नहीं होती वरन् पुरुष भी उतना ही दोषी होता है। पुरुष अपनी कमजोरी को स्वीकार नहीं करना चाहता है, अतः जब वह अपने मार्ग से विचलित होकर च्युत हो जाता है और उसे अपनी भूल का अहसास होता है, तो वह अपनी सारी भड़ास स्त्री पर निकालता है और उसे बुराइयों की खान कह देता है। दूसरी ओर स्त्रियों के साथ ऐसा हो भी जाए तो वे स्वयं की गलती का अहसास रखते हुए लज्जाशीलता, के कारण एक शब्द भी पुरुष के विरोध में नहीं बोलती हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री की संकल्पशक्ति अधिक दृढ़ होती है। दूसरे, अधिकांश ग्रंथों का आलेखन पुरुषों द्वारा ही किया गया है अतः स्त्री को दोषारोपित किया गया है।

जैन धर्म में जहाँ नारी को नरक की कुंजी कहा है वहीं ऐसी अनेक सन्नारियाँ भी हुई हैं जिन्होंने इस उक्ति को झूठा साबित कर दिया । उन्होंने ऐसे मुनि को भी धर्म आचरण में स्थिर किया था जो अपने पथ से विचलित होकर पतन की ओर जा रहे थे जैसे एक राजमती ने रथनेमि को प्रतिबोधित करके अपने आचार में स्थिर किया था। इसी प्रकार सुलसा, सुभद्रा, जयन्ती, कुन्ती, द्रौपदी आदि अनेक विद्वान धर्मनिष्ठ जैन उपासिकाएँ हुईं जो आज भी नारी जाति के गौरव और गरिमा का प्रतीक बन कर समस्त नारी समाज का प्रेरणा स्रोत बनी हुई हैं। जो नारी शील की रक्षा के लिए त्याग करती थी उसकी देवता भी वन्दना करते थे।

इस प्रकार नारी को माता, उपासिका एवं साध्वी रूप में हमेशा पूजा गया है। लेकिन जहाँ पुरुष से नारी की तुलना हुई है वहाँ नारी को सदैव हीन ही रखा गया है चाहे वह धार्मिक क्षेत्र हो अथवा सामाजिक। फिर भी जैन धर्म में नारी को आध्यात्मिक क्षेत्र में जितने अधिकार दिए गये हैं, जितना सम्मान व महत्व दिया गया है, उतना भारत की प्राचीन संस्कृति में अन्यत्र नहीं मिलता है।

संदर्भ दृष्टव्य :

१. **आदिपुराण,** १६/९८, १६/१०३-१०४, १५/१३७

२. **भगवती सूत्र,** ८१५/३

३. **ज्ञाता धर्म कथांग,** १/२/१०, १/८/३९

४. **उत्तराध्ययन सूत्र,** ३२/९४, व अध्याय ६

५. **दशवैकालिक टीका,** अध्याय २

- २०२, वीर दुर्गादास नगर, पाली (राज.) -३०६४०१

जैन संस्कृति का प्रतीक : स्वस्तिक

- डॉ० (श्रीमती) संगीता दिलीप मेहता

मानवीय सद्गुणों की समन्वयात्मक समष्टि ही भरतीय संस्कृति है। इसमें "सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु' का शंखनाद है, "वसुधैव कुटुम्बकम्" की महती कल्याणकारी भावना समाहित है, "सत्यमेव जयते" का अटल विश्वास है तथा "अहिंसा परमोधर्मः" के उद्घोष में प्राणियों की रक्षा का आह्वान है। इन्हीं शुभ संकल्पों से सुख-शांतिमय जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से हमारे मनीषियों ने अनेक सांस्कृतिक सूत्र हमें प्रदान किये जो विविध रूपों में हैं।

जीवन में अनेक सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिये स्थूल प्रतीकों को माध्यम बनाया जाता है - न केवल जीवन अपितु अध्यात्म की ओर जाने वाली वीथिका का कण-कण प्रतीकात्मक है। स्वस्तिक, ओम्, दीपक, कलश, तिलक, ध्वज, आदि अनेक प्रतीक मंगल और क्षेम के प्रतीक हैं। स्वस्तिक इन सभी प्रतीकों में सर्व प्राचीन और सभी धर्मों में सर्वमान्य कल्याणकारी प्रतीक है। यह मंगलकारी प्रतीक आकृतिमूलक है जो सृष्टि के उद्भव एवं विकास का और गौरव तथा कल्याण का सूचक है। जैन संस्कृति में यह प्रतीक अनादि निधन है।

व्युत्पत्ति

सु+अस्ति+क्तिच प्रत्यय से **स्वस्ति** शब्द निर्मित है जिसका अर्थ क्षेम, कल्याण, आशीर्वाद, जय-जयकार आदि है।[1]

कः (कच्+ड) शब्द ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, वायु, यम, सूर्य, आत्मा, मन, शरीर, राजा, शब्द-ध्वनि आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त है।[2] आद्य व्यंजन 'क' व्यंजनरूपी प्रजासृष्टि का स्वामी प्रजापति है जिस प्रकार ब्रह्मा अग्रजन्मा प्रजापति है।

स्वस्ति शुभाय हितं क इस व्याख्या से स्वस्ति शब्द का अर्थ है - एक मंगल चिह्न, कोई मंगल द्रव्य, चार मार्गों का मिलना, भुजाओं का व्यत्यस्त रूप से छाती पर रखना जिससे एक व्यत्यस्त (X) चिन्ह निर्मित हो।[3] **स्वस्तिप्रदः कल्याणमंगलप्रदःक।**

स्वस्तीत्यविनाशनाम् अस्तिरेभिपूजितः। सु अस्तीति।[4] अर्थात् स्वस्ति विनाश राहित्य का नाम है। अभिपूजित सत्ता का नाम जो कल्याण करता है वह स्वस्ति है। यह अविनाशी ब्रह्म है।

'स्वस्याशीः क्षेमपुण्यादौ'। अमरकोश में इसे पुण्य, मंगल, क्षेम एवं आशीर्वाद के अर्थ में लिया गया है।[५]

विश्वलोचनकोश में यह चतुष्क (आसन), गृहभेद, पीठीविशेष, रततालिका आदि अर्थ में प्रयुक्त है।[६]

वेदों में प्रकाश, कल्याण, दीर्घायु के अर्थ में अनेक स्थलों पर स्वस्ति का प्रसंग मिलता है। **ऋग्वेद** में सविता देव अर्थात् सूर्य का संबंध बहुशः स्वस्ति से किया गया है, जो चारों दिशाओं को आलोकित करते हैं। संभवतः इसी परिप्रेक्ष्य में स्वस्ति की चार भुजाएं चारों दिशाओं के कल्याण के प्रतीक के रूप में मानी जाती हैं। पौराणिक परम्परा में ब्रह्मा के चार मुख या विष्णु की चार भुजाओं के प्रतीक के रूप में भी 'स्वस्तिक' की व्याख्या की जाती है।

सिंधु घाटी सभ्यता में भी स्वस्तिक का अंकन हुआ है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त एक मुद्रा पर हाथी स्वस्तिक के सामने झुका हुआ है। इस काल की अनेक मृण्यम मुद्राओं में अनेक आकृतियों के स्वस्तिक अंकित हैं। लोक क्षेत्र में स्वस्तिक को 'सतिया' या 'सथिया' भी कहा जाता है। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यह एक मांगलिक चिह्न है, जो बहुत शुभ माना जाता है। पूजन के पहले मांगलिक द्रव्यों (हल्दी, चंदन, केशर, कुमकुम आदि) से विशेष उत्सवों और शुभ अवसरों पर इसे अंकित किया जाता है।

स्वस्तिक स्वरों का प्रतीक होने से नादब्रह्म का प्रतीक है। वैखरी वाणी के दो भाग हैं - स्वर और व्यंजन। स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ मूल हैं। शेष स्वर इन्हीं के परस्पर मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। जो मूल स्वर हैं, वही सूर्य की छः किरणें हैं - वे सभी देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - दहनी, पचनी, धूम्रा, कर्षिणी, वर्षिणी और रसा।

स्वराणां षट्कमेवेह मूलं स्याद्वर्ण संततौ। षड्देवतास्तु ताएव मुख्याः सूर्यरश्मयः (तन्त्रालोक २.३.१८/१८), अर्थात् स्वस्तिक इन रश्मियों से युक्त सूर्य का प्रतीक है। सूर्य जीवनदायी होने के साथ-साथ प्रकाश का वितरण करता है। प्रकाश भले-बुरे की ज्ञान-अज्ञान की पहचान करवाता है। स्वस्तिक उस सूर्य का प्रतीक होने के कारण ज्ञानदायक है - बुराई से दूर रहने का मार्ग दिखाता हुआ सुखपूर्वक मंगलमय अस्तित्व प्रदान करने वाला है।[७]

स्वस्तिक में जैन सृष्टिविद्या

सृष्टिविद्या के प्रतीक स्वस्तिक में जैन सृष्टिविद्या का रहस्य भी गर्भित है। इसको बनानेवाली प्रमुख दो रेखाएँ + जीव और अजीव अर्थात् पुद्गल द्रव्यों के अनादि संसर्ग की प्रतीक हैं तथा उन रेखाओं के चार शीर्ष जीव-अजीव के संयोग से निर्मित धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल नामक चार द्रव्यों के प्रतीक हैं। जैन दर्शन में स्वस्तिक कर्मविज्ञान से सम्बद्ध है।

इसकी खड़ी रेखा तीन लोकों को तथा आड़ी रेखा मध्यलोक को दर्शाती है। स्वस्तिक के चार शीर्ष वाली आकृति देव गति, मनुष्य गति, नरक गति और तिर्यंच गति आदि चार गतियों में होने वाले भव भ्रमण को दर्शाती है। इसकी चार रेखाएँ चार दिशाओं की प्रतीक हैं। स्वस्तिक के अन्तर्गत चार बिन्दु जैन वाङ्मय के चार अनुयोगों प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को सूचित करते हैं। ये चार बिन्दु दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप नामक चार आराधना, चार ध्यान तथा अनंत चतुष्टय के भी प्रतीक हैं।

जैन परम्परा में पूजनादि के अवसर पर स्वस्तिक के ऊपर तीन बिन्दु लगाये जाते हैं जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतीक हैं एवं उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु सिद्धशिला और सिद्धपद का प्रतीक है। एक ओर लगाये जाने वाले पाँच बिन्दु पंच परमेष्ठी के प्रतीक हैं।

जैन संस्कृति में तीर्थंकरों के शरीर में चिह्नित १००८ शुभ लक्षणों (९०० व्यंजन+१०८ लक्षण=१००८) में भी स्वस्तिक है। राम एवं श्रीकृष्ण के चरणों में भी स्वस्तिक का चिह्न है। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का चिह्न स्वस्तिक है। स्वस्तिक अष्टमंगल (पूर्णकुम्भ, चैत्यवृक्ष, स्वस्तिक, चक्र, मीन-मिथुन, सरावसंपुट या सकोरे का जोड़ा) के अन्तर्गत भी आता है।

जैन संस्कृति में स्वस्तिक रक्षा का प्रतीक है। कहा गया है कि जब-जब प्रलय आती है तब इन्द्र तीर्थंकरों की जन्म एवं निर्वाण भूमि पर वज्र से स्वस्तिक का निर्माण करते हैं। ऐसे हीरे के स्वस्तिक आज भी श्रीसम्मेदशिखर एवं अयोध्या में विद्यमान हैं।

जैन संस्कृति में स्वस्तिक पूजा का सार्थक उद्देश्य है। यह अंतरंग भावना का प्रतीक है जो जीव को चारों गतियों से मुक्त कर सिद्धक्षेत्र में पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करता है।

नरसुतिर्यङ्नारक-योनिषु परिभ्रमति जीवलोकोऽयम्।
कुशला स्वस्तिक-रचनेतीव निदर्शयति धीराणाम्।।[८]

अर्थात् संसार में प्राणी निरन्तर जन्म-मरण करता हुआ चार मोड़ वाली रेखाओं में निरूपित नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्यगति के रूप में लोक की चौरासी लाख योनियों में घूमता है।

स्वस्तिक के चारों शीर्षों को मोड़ देने से ८ रेखाएं हो जाती हैं जो अष्ट प्रातिहार्य, ८ कर्म, ८ मंगल, तथा सिद्धों के ८ गुणों की प्रतीक हैं। स्वस्तिक को जब तिरछा बनाया जाता है तो नंद्यावर्त की आकृति बनती है।

पूजन के समय स्वस्तिक बनाने की विधि का भी सूक्ष्म विवेचन जैन वाङ्मय में मिलता है। हस्त प्रक्षालन कर मंत्रित जल से स्वयं की एवं स्थल की शुद्धि करके द्रव्य अर्पित करने की थाली में दाहिने हाथ की अनामिका से स्वस्तिक अंकित करते समय प्रथमतः खड़ी रेखा नीचे से ऊपर की ओर बनाना है जिस प्रकार आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रार्थना ईश्वर से की जाती है। स्वस्तिक बनाते समय अंगुली को उठाना नहीं है, बनी हुई रेखा पर दोबारा रेखा बनाई जा सकती है।

प्रतिष्ठा पराग में स्वस्तिक अंकन के उद्देश्य और भावना का इस प्रकार वर्णन है कि स्वस्तिक में १ से १६ बिन्दु बनाकर प्रत्येक बिन्दु के माध्यम से व्यक्ति अपने भवभ्रमण का वर्णन करता हुआ शुभसंकल्प को एवं चारों अनुयोगों के अध्ययन के माध्यम से रत्नत्रय को धारण करता हुआ सिद्धशिला से ऊपर सिद्धपद की प्राप्ति की कामना करता है। स्वस्तिक में १ से ६ की संख्या का भी अंकन किया जाता है। इसका जोड़ दायें से बायें, ऊपर से नीचे, सभी तरह से १५ आता है जो १५ प्रमाद के निवारण का सूचंक है। ६ का अंक अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो कभी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है।

स्वस्तिक और सृष्टिविद्या

ब्राह्मी लिपि के पूर्वोक्त अक्षर + (क) तथा वेदादि में क के नाम से प्रसिद्ध प्रजापति ब्रह्मा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वस्तिक के चार शीर्ष (+) से उन प्रजापति ब्रह्मा के चार मुख, चार हाथ, तथा उनके द्वारा रचित चार वर्ण, चार आश्रम, चार युग तथा चार प्रकार की प्रजा, चार पुरुषार्थ, चार वेद, चार नक्षत्र आदि चतुरात्मक तत्व परिलक्षित होते हैं। ब्रह्मा के समान, स्वस्तिक की लोकपूज्यता भी इस परिकल्पना की पुष्टि करती है। स्वस्तिक के अलंकृत रूपों में चार लघु रेखाओं तथा चार लघु बिन्दुओं

का प्रयोग भी चातुर्वर्ण्य आदि चतुरात्मक तत्वों से समृद्धि को सूचित करता है।

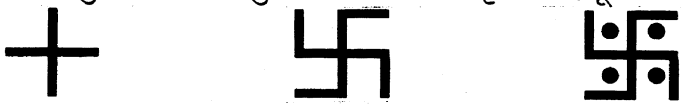

स्वस्तिक के सभी रूपों का मूल आधार दो रेखाओं का संसर्ग है। एक खड़ी (।) का संसर्ग एक आड़ी रेखा (-) से होने पर स्वस्तिक (+) का निर्माण होता है। खड़ी रेखा से अपरिणामी पुरुष का बोध होता है तथा आड़ी रेखा प्रकृति का प्रतीक है। जब प्रकृति और पुरुष का संसर्ग होता है तब महद् तत्व की उत्पत्ति होती है। महत्त्व का अधिष्ठाता ब्रह्मा है और ब्रह्मा का प्रतीक स्वस्तिक है, अतः महत्त्व का प्रतीक भी स्वस्तिक हुआ। महदात्मक स्वस्तिक के ये चार शीर्ष उसके धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इन चार भाावों के प्रतीक हैं। यही शीर्ष महत्त्व बुद्धि के अधिष्ठाता ब्रह्मा के चतुर्वेदरूपी चार मुख हैं।

अलंकृत स्वस्तिक के दक्षिणावर्त तथा वामावर्त ये दोनों रूप महत्त्व के सात्विक तथा तामस रूपों के प्रतीक हैं। दक्षिणावर्त स्वस्तिक द्वारा महत्त्व के धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य रूपी चार सात्विक रूपों को तथा वामावर्त स्वस्तिक द्वारा तामसभाव प्रदर्शित किये जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण से वामावर्त स्वस्तिक को लोक में अशुभ माना जाता है।

स्वस्तिक का पूर्णालंकृत रूप समग्र सृष्टि-रहस्य को भी अभिव्यक्त करता है। स्वस्तिक का वामावर्त रूप विश्व की सृष्टि का प्रतीक है। उसका वर्धितरूप सृष्टिसहित प्रलय का तथा बिन्दुसहित रूप सृष्टि एवं संहारसहित स्थिति का भी प्रतीक है। मूल स्वस्तिक + के शीर्ष पर लगी रेखाएँ सृजन की गतिशीलता की प्रतीक हैं। किन्तु इन रेखाओं के भी शीर्ष पर लगी रेखाएँ सृजन की विपरीत गति अर्थात् संहार का प्रतीक हैं। सृष्टि वाचक स्वस्तिक के क्रोड में स्थित बिन्दु सृष्टि की अगतिशीलता अर्थात् स्थिति का प्रतीक हैं।

इस प्रकार एक ही स्वस्तिक के सृष्टि, स्थिति एवं संहारात्मक सिद्ध हो जाने पर उसे इन अवस्थाओं के अधिष्ठाता देवताओं का प्रतीक भी माना जाता है। स्वस्ति के तीन रूप - क्रमशः स्रष्टा-ब्रह्मा, पालक-विष्णु तथा संहर्ता-शिव को भी घोषित करते हैं तथा इन सब आकृतियों में समान रूप से विद्यमान संसर्ग-बिन्दु अर्थात् स्वस्तिक के केन्द्र अथवा नाभि को इस सृष्टि के केन्द्रभूत ब्रह्म का प्रतीक भी माना जा सकता है। जिस प्रकार स्वस्तिक की नाभि के चारों ओर सर्ग, स्थिति एवं संहार का चक्र

चलता रहता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड-नाभि ब्रह्म के चारों ओर विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का चक्र चलता रहता है।

नाद ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, सामाजिक एकता, सूर्य (ज्ञान) की रश्मियों आदि का प्रतीक स्वस्तिक निश्चय ही सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह विघ्न हरण करने वाला ज्ञानदायी मंगलमय कार्य का प्रतीक है। 'स्वस्तिक' शब्द अर्थ की दृष्टि से भी कल्याणकारी मंगलमय है।

स्वस्तिक चिह्न में किसी धर्म विशेष की नहीं, अपितु इसमें सभी धर्मों एवं समस्त प्राणिमात्र के कल्याण की भावना निहित है। इसलिए हिन्दू धर्म ही नहीं, अपितु विश्व के सारे धर्मों ने इसे परम पवित्र, मंगल करने वाला चिह्न माना है। इसे श्री अर्थात् धन की देवी लक्ष्मी का चिह्न भी माना गया हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में स्वस्तिक का चिह्न अपने में अनेक प्रतीकों को समेटे हुए चारों दिशाओं के अधिपति देवताओं, अग्नि, इन्द्र, वरुण व सोम की पूजा के लिए और सप्तऋषियों के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

सन्दर्भ-

१. वामन शिवराम आप्टे : **संस्कृत हिन्दी कोश,** पृ. ११५६

२. वही, पृ. २३५

३. वही, पृ. ११६०; शोभानाथ पाठक : **सांस्कृतिक प्रतीक कोश,** पृ. ३६६

४. यास्क कृत **निरुक्त,** ३/२१

५. **अमरकोश,** कांड ३, वर्ग ३, पद २४८

६. **स्वस्तिको मंगलद्रव्ये चतुष्कगृहभेदयोः। स्वस्तिकः पिष्ठकस्याऽपि प्रभेदे रततालिके।** श्रीधरसेनाचार्य : **विश्वलोचनकोश,** पद १७१-१७२

७. डॉ० उषा पुरी विद्यावाचस्पति : **भारतीय मिथकों में प्रतीकात्मकता,** पृ. ७६-८०

८. पं. गुलाबचंद पुष्प व ब्र. जयकुमार निशंत : **प्रतिष्ठा पराग,** पृ. २

- प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत,
शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर

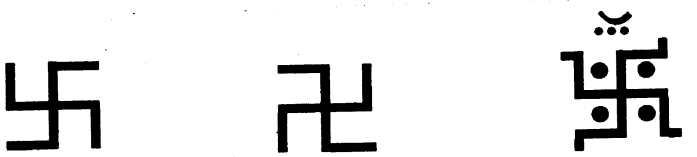

दक्षिणावर्त स्वस्तिक वामावर्त स्वस्तिक पूर्णालंकृत स्वस्तिक

राजस्थान में जैन धर्म की प्राचीनता

– वैद्य प्रकाश चंद्र जैन 'पांड्या'

जैन-धर्म राजस्थान में उतना ही प्राचीन है जितना कि भारत के अन्य प्रदेशों में। कई विद्वान एवं इतिहासज्ञ राजस्थान में महावीर के समय से इसका उदय होना मानते हैं, पर पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार जैन धर्म राजस्थान में ऋषभदेव के समय से ही प्रचलित था।

पुराणों के अनुसार भ० ऋषभदेव का विहार 'मत्स्य' प्रदेश में हुआ था। राजस्थान को प्रचीन काल में 'मत्स्य' देश कहते थे। यह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का एक प्रदेश था। भ. ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने अपने राज्यकाल में 'मत्स्य प्रदेश' में अनेक जैन मंदिर बनवाये थे।[1]

'मत्स्य' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम **ऋग्वेद** में मिलता है। **'शतपथ ब्राह्मण'** के अनुसार 'मत्स्य' लोग सरस्वती नदी के समीप बसे हुए थे।

महाभारत युद्ध के समय विराट (वर्तमान बैराट) मत्स्य के विस्तृत राज्य की राजधानी थी। मत्स्यों ने पांडवों के प्रमुख सहयोगियों के रूप में सक्रिय भाग लिया था।[2]

ऐसा भी कहा जाता है कि उदयपुर से ४० मील दूर केशरिया जी नामक स्थान पर विराजमान ऋषभनाथ की मूर्ति रावण के महल में विराजमान थी। इसकी वीतरागता और मनोज्ञता से प्रभावित होकर श्री रामचंद्र जी अयोध्या के मंदिर में विराजमान करने के लिए अपने साथ इस मूर्ति को लाये थे। किन्तु मूर्ति केशरिया जी के पास आने पर आगे नहीं खिसकी, अतः उन्होंने इस मूर्ति को वहीं स्थापित कर दिया। रामचन्द्र जी २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ काल में हुए माने जाते हैं।

यह भी अनुश्रुति है कि २३वें तीर्थंकर भ० पार्श्वनाथ बिजौलिया क्षेत्र में विहार करते हुए आये थे। भगवान पार्श्वनाथ का समय ई.पू. आठवीं शताब्दी माना जाता है। भ. पार्श्वनाथ रेवा नदी के तट पर ध्यानस्थ हुए थे और उन पर कमठ का उपसर्ग यहीं हुआ था। कमठ ने ध्यानस्थ पार्श्वनाथ पर कटी चट्टानें फेकी थीं किंतु वे ध्यान से नहीं डिगे। इसका उल्लेख वहाँ पर पड़ी हुई पत्थर शिलाओं पर संवत् १२२६ के अभिलेख में भी है। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ का उपसर्ग दूर होते ही उनको कैवल्यज्ञान यहाँ हो गया था और कुबेर ने बिजौलिया क्षेत्र में रेवा नदी के किनारे प्रथम समवशरण की रचना की थी। इस समय बिजौलिया पार्श्वनाथ (मेवाड़) में कई दिगम्बर

मुनियों की प्रतिमाएँ हैं। एक मानस्तंभ पर तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ दिगम्बर मुनिगण के प्रतिबिम्ब व चरण चिह्न भी अंकित हैं। दो मुनिराज शास्त्र-स्वाध्याय करते हुए दिखाये गये हैं। उनके पास कमण्डल व पिच्छी रखे हुए हैं।

भगवान् पार्श्वनाथ के बाद महावीर भी इस प्रदेश में पधारे थे। डा० राजेन्द्र रत्नेश के अनुसार दशार्ण जनपद की राजधानी मृतिकावती जाते हुए महावीर मध्यमिका रुके थे। मध्यमिका का सीमा विस्तार मरुप्रदेश से मालवप्रदेश के बीच फैला हुआ था। मध्यमिका को शिवि जनपद की राजधानी माना जाता है। यह तथ्य एक मुद्रा लेख में उत्कीर्ण है -'मज्झिमि कय शिविं जनपदस'। अर्थात् शिवि जनपद की राजधानी मध्यमिका नगरी। यह मुद्रा लेख दो सदी ईसा पूर्व का है। **'ऐतरेय ब्राह्मण'** और **'महाभारत'** में भी 'शिविगणों' का वर्णन मिलता है।[३] राजस्थान का सबसे प्राचीन उल्लेख 'मरु' नाम से **ऋग्वेद** में मिलता है। मरुप्रदेश का उल्लेख **महाभारत** के वन पर्व (२०१-४१), **वृहत संहिता, सम्मोहन तंत्र,** रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख (१५० ई०) तथा पाल अभिलेखों में मिलता है। मध्यमिका नगरी जहाँ महावीर का विहार हुआ था, का विस्तार जालौर, आबू पर्वत, भीनमाल तक फैला हुआ था। भीनमाल क्षेत्र में मिली आठवीं सदी की जीवंत स्वामी की एक कांस्य प्रतिमा सुमेरपुर के पास नलवानी से मिली है, जो बांगड़ म्यूजियम में संरक्षित है।[४]

यह भी अनुश्रुति है कि भगवान महावीर के मामा एवं लिच्छवी गणतंत्र के प्रमुख चेटक की ज्येष्ठ पुत्री प्रभावती सिंधु-सौवीर के शासक उदायन से ब्याही गई थी। उदायन जैन धर्म को पालता था। **भगवती सूत्र** के अनुसार उसने अपने भाणेज केशी को राज्य देकर अंतिम समय में श्रमण दीक्षा स्वीकार की थी। उस समय सौवीर प्रदेश के अन्तर्गत जैसलमेर और कच्छ के हिस्से माने जाते थे।

मुंगस्थल से प्राप्त १३६६ ई. के शिलालेख से यह भी पता चलता है कि भ. महावीर स्वयं अर्बुद भूमि में पधारे थे।[५]

महावीर के बाद राजस्थान में जैन धर्म चारों ओर फैल चुका था। अशोक के पितामह मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त के शासन काल (३१७-२९८ ई.पू.) में जैन धर्म का पूरा विकास हुआ था। बिन्दुसार जिनका समय २९८ ई.पू. से २७४ ई.पू. माना जाता है, अशोक के पिता थे और उन्होंने अनेक जैन मंदिर बनवाये थे। अशोक के पौत्र संप्रति को जैन परम्परा में राजस्थान, गुजरात और मालवा में अनेक मंदिरों का निर्माण तथा मूर्तियां प्रतिष्ठित करवाने का श्रेय प्राप्त है।[६]

मेवाड़ राज्य में जब-जब सरकारी किलों की नींव रखी जाती थी तब-तब राज्य की ओर से जैन मंदिर बनवाये जाने की प्रथा थी।[७] गौरीशंकर हीराचंद ओझा जी द्वारा अनुदित **टाड राजस्थान जागीरी प्रथा** (पृष्ठ ११) में उल्लेख है कि मेवाड़ राज्य में सूर्यास्त के पश्चात् भोजन की आज्ञा नहीं थी। कर्नल टाड ने अपनी रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि कोई भी जैन मुनि उदयपुर में पधारे तो रानी महोदया आदरपूर्वक विधि अनुसार उनके आहार का प्रबंध स्वयं करती थीं।[८]

उदयसिंह द्वारा वि.सं. १६१० में उदयपुर की स्थापना से पहले पिछौला तालाब के पास पिछौला बस्ती बसी हुई थी और उन्होंने ही पिछौला तालाब बनवाया था। पिछौला जैन थे, आज भी जैनों में पिछौला गोत्र माना जाता है।[९] उदयपुर के जैन मंदिरों में वि. संवत् १३२५, १३४२, १३९१ की अनेक मूर्तियां पाई जाती हैं जिनसे यह विदित होता है कि उदयपुर की स्थापना के तीन सौ वर्ष पहले भी वहाँ जैन-धर्मावलम्बी रहते थे।

मौर्य वंश के बाद जैन मुनि कालकाचार्य ने, जिनका समय १९० ई.पू. से प्रथम शताब्दी हो सकता है,[१०] सौराष्ट्र और अवंति के साथ पश्चिम राजस्थान में भी धर्म प्रचार किया था। इस समय अजमेर एवं पुष्कर के बीच हर्षपुर एक समृद्धिशाली नगर था जिसकी पहचान हरपुर से की जाती है। जैन परम्परा में हर्षपुर को जैन धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र वर्णित किया गया है जहाँ ३०० जैन मंदिर थे।

राजस्थान के साहित्य में दो बंदरगाहों भूपीटक (सोपारा) और ताम्रलिप्ति (तामलुक) का अनेक जगह उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ से राजस्थान के व्यापारी स्वर्णद्वीप, चीन, जावा और सुमात्रा देशों से व्यापार करते थे। हो सकता है कि कालकाचार्य ने इसी मार्ग से जाकर विदेशों में धर्म प्रचार किया हो।[११]

विक्रमादित्य ने भी जैन-अनुश्रुति के अनुसार जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर के प्रभाव से जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। वह मालव गणतंत्र से संबद्ध थे और उनका शासन कालांतर में अजमेर, जयपुर व टोंक के त्रिकोण प्रदेश पर होने की पुष्टि सिक्कों और अभिलेखों से होती है।[१२]

इस प्रकार राजस्थान में जैन धर्म हजारों-लाखों वर्षों से मौजूद है। इस धर्म को राजस्थान में भी भारत के अन्य प्रदेशों की तरह सुरक्षित रखने एवं उत्कर्ष की ओर पहुँचाने का श्रेय हम अपने साधु-संतों, मुनियों, आचार्यों आदि को दें तो इसमें कोई

अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि साधु-संतों ने जैन धर्म का प्रचार तो किया ही, धर्म के प्रति जन-चेतना भी जाग्रत की। जहाँ-जहाँ जब-जब जैन धर्मी पहुँचे या निवास करने लगे, वहाँ-वहाँ और उस-उस समय में उन्होंने जैन-मंदिर बनवाये, साथ ही अपनी शिल्प विद्या, स्थापत्य कला, चित्र, साहित्य सृजन आदि का कार्य भी करवाया। इस कार्य में समय-समय पर स्थानीय जैन बंधुओं ने धर्माराधना तथा सेवा की भावना से तन,मन और धन से पूर्ण सहयोग दिया। यही परम्परा आज तक मुनियों और आचार्यों में कायम है और हमारा धर्म सुरक्षित है।

संदर्भ-

१. श्री दिगम्बर दास जैन, एडवोकेट, सहारनपुरः 'राजस्थान का इतिहास और पुरातत्व', **महावीर जयंती स्मारिका ७६**, पृष्ठ २-६६

२. डॉ. राम गोपाल शर्माः 'राजस्थान की मौलिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि', **जिनवाणी विशेषांक**, पृ. १२०

३. **राजस्थान पत्रिका**, रविवारीय अंक २३, नव. २००८, पृ. ३

४. त्रिभुवन लाल साहः Ancient India, १, पृ. २१५

५. सुश्री आभा जैनः 'राजस्थान में जैन संस्कृति का विकास', **पार्श्वनाथ युवा मण्डल स्मारिका, ५**, १९८३, पृ. १२

६. टी. एल. साह, वही, २, पृ. २९३-९४

७. श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीयः **राजपूताने के जैन वीरों का इतिहास**, पृ. ३३९

८. राव राजा वासुदेव गोविंद आप्टेः **जैन धर्म का महत्त्व**, भाग-१, पृ. ३१

९. श्री तेजसिंह तरूणः **'उदयपुर की स्थापना संबंधी नवीन ज्ञातव्य', शोध पत्रिका**, वर्ष १९, अंक ३, पृ. ५५

१०. **ज्ञान-प्रकाश**, प्रथम भाग, पृष्ठ ३८ (लेखक की पुस्तक)

११. डॉ. जिनेश्वर प्रसाद : **अंगकौर के पंचमेरू मंदिर**

१२. Indian Antiquary, Vol.20; Epigraphia Indica, Vol. 27, p. 266

'पांड्या-भवन,' ५६६, मनिहारों का रास्ता, जयपुर-३०२००३

उत्तम क्षमा के अनोखे प्रयोग

- डॉ. स्वयंप्रभा पि. पाटील

(लेखिका द्वारा मराठी भाषा में मूल रूप से निबद्ध और 'जैन बोधक', १६-३१ डिसें २००६, व 'सन्मति', नौवें-२००८, में प्रकाशित तथा श्री दीपक मजलेकर शास्त्री द्वारा हिन्दी में अनुदित। विज्ञान की प्रायोगिकी पद्धति के अनुसरण में शैली का यह अभिनव प्रयोग विषय को सहज रूप से ग्राह्य बनाता है। - सम्पादक)

प्रयोग पूर्व जानकारी एवं सावधानियाँ :-

उत्तम क्षमा आत्मा का एक धर्म है और यह प्रयोग करने से व्यक्त होता है, इसलिए यह चर्चा का विषय न होकर चर्या का विषय है। यह केवल परिभाषा नहीं, प्रयोग है। वीतराग विज्ञान का यह सिद्धान्त ज्ञात होना आवश्यक है।

१. **धारण सामर्थ्यात् धर्म इत्येषा संज्ञा अन्वेर्थेति।** (**राजवार्तिक**,९/६/२४) अर्थात् धारण करने की सामर्थ्य होने से दिये गये संकेत के अनुसार अपने जीवन को ही प्रयोगशाला मानकर यह प्रयोग आदि से अन्त तक स्वयं के लिए एवं स्वयं पर ही करना है। उत्तम क्षमा के प्रयोग अल्प मात्रा में भी दूसरों पर करने के लिये जिनशासन ने पूर्णतः निषेध दर्शाया है।

२. प्रयोग करते समय लौकिक लाभ टालने के संदर्भ में अत्यन्त सचेत रहना चाहिए, तभी प्रयोग पूर्णतः सफल होगा।

३. प्रयोग की पूर्व तैयारी के रूप में यदि प्रात्यक्षिक के पूर्व प्रतिक्रमण का प्रोजेक्ट तैयार किया जाय तो प्रात्यक्षिक के लिये समय कम लगेगा क्योंकि दैवसिक, रात्रिक आदि प्रतिक्रमणों के माध्यम से क्षमा का ही अच्छा अभ्यास होता हुआ दिखाई देता है।

४. यह प्रयोग अगर कहीं एक बार भी सफल हो जाए, तो भी उससे निर्माण होने वाली ऊर्जा प्रचंड होती है। उसका यहां एकक में परिमाण देखिए।

पुष्पकोटी समं जपः, जपकोटी समं स्तोत्रम्।
स्तोत्रकोटी समं ध्यानं, ध्यानकोटी समं क्षमा।।

१ करोड़ फूलों से की गई पूजा	=	१ जाप करना
१ करोड़ जाप करना	=	१ स्तोत्र का पाठ करना
१ करोड़ स्तोत्र का पाठ करना	=	१ बार ध्यान करना
१ करोड़ बार ध्यान करना	=	१ बार क्षमा करना

इस सत्यार्थ प्रामाणित एकक के विपरीत उत्तम क्षमा धर्म = एक करोड़ पुष्पों से की गई पूजा - इस प्रकार अप्रमाणित एकक बनाकर उसका अनुकरण नहीं किया जाए, इसका ध्यान रखना चाहिए।

उद्देश्य :-

आत्मिक ऊर्जा का निर्माण करना, आत्मिक ऊर्जा के अनेक शाश्वत स्रोत प्राप्त करना - इस प्रयोग का उद्देश्य है। इस संदर्भ में वैज्ञानिक शास्त्रकारों का यह मानना है कि उत्तम क्षमा से पूरी दुनिया का वैभव हाथ में आता है।

क्षमाबलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।
क्षमावशक्षी कृते लोके, क्षमया किं न सिध्यति।।

क्षमा अर्थात् दुर्बलों का बल, क्षमा अर्थात् शक्तिमानों का अलंकार, जहाँ क्षमा से सारी दुनिया मुट्ठी में आती है वहाँ क्षमा से क्या साध्य नहीं होगा ? अर्थात् सब कुछ क्षमा से प्राप्त कर सकते हैं।

सामग्री :-

यह प्रयोग करने के लिये सबसे आवश्यक बात है आत्मानुभूति।

उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना।

आनंदमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना।।

इसके अतिरिक्त सच्चे देव, शास्त्र, गुरुओं पर दृढ़ श्रद्धा, शास्त्रों का स्वाध्याय, इत्यादि अन्य सामग्री भी सहायक हो सकती है।

कार्य विधि :-

क. संक्षित विधि :-

क्रोधात्पत्तिनिमित्तानां सन्निधाने सति कालुष्याभावः क्षमा।।

अर्थात् क्रोध निर्माण करने वाले अनेक कारण एकत्रित होने पर भी आत्मा में कलुषता का अभाव होना वह क्षमा है।

ख. विस्तृत विधि :-

विधि क्रमांक-१

प्रख्यात तत्त्वज्ञ आचार्य शुभचंद्र के द्वारा विकसित की गई विधि उन्हीं की भाषा में कहें तो-

आकृष्टोऽहं हतो नैव हतो वा न द्विधा कृतः।
मारितो न हतो धर्मो मदीयोऽनेन बन्धुना।। ज्ञानार्णव, ६३५

अर्थात् किसी के गाली देने पर या भला बुरा कहने पर ऐसा समझना चाहिए कि उसने मुझे केवल गाली ही दी है, मारा तो नहीं ? किसी ने मारा भी तो ऐसा सोचना चाहिए कि इसने मुझे लाठी से ही तो मारा है, छुरा तो नहीं भोंका ? छुरा भी भोंक दिया

तो भी ऐसा विचार करना कि मेरे इन मित्रों ने मुझे इस घृणास्पद शरीर से छुटकारा ही तो दिलाया है, मेरी आत्मा को धक्का तक नहीं लगाया, मेरी आत्मा तो अमर ही है।

वास्तव में तो मुझे इस अकारण मित्र के लिए शतशः धन्यवाद ही देना चाहिए क्योंकि स्वयं के हजारों पुण्य खर्च कर के इन्होंने अगर मेरे दोष नहीं निकाले होते, गालियाँ, मार-पीट आदि विभिन्न प्रयोगों से मेरे दोषों का इलाज नहीं किया होता तो मेरे दोष दूर कैसे होते ? मेरे दुष्कर्मों के शातिर कैसे नष्ट होते? ऐसे उपकार करने वाले पर अगर मैं क्रोध करूँगा, तो मुझ जैसा कोई अधम नहीं है।

मेरी आत्मा में उत्पन्न होने वाला यह क्रोध ही मेरा सच्चा वैरी है जिसने मेरे द्वारा अत्यधिक श्रम से प्राप्त किए मैत्री, तप, व्रत, नियम, दया, सौभाग्य, विद्या, इन्द्रिय-विजय आदि गुणों को लूटा है।

पूर्व में विवेक और ज्ञानपूर्वक मैंने जिस धर्म की आराधना की और जिस शांति की उपासना की उनमें रही दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए मानो यह प्रतिकूलता उपस्थित हुई है और ऐसे समय में अगर मैं क्रोध करूँ तो मेरी साधना कब काम आएगी ?

शांति का और धर्म का उपासक होकर अगर मैं इस प्रकार क्रोध करता रहूँगा तो मुझ में और सामने वाले परेशान करने वाले अज्ञानी व्यक्ति में क्या फर्क रहा ? इस प्रकार की वैचारिक किरणें जब केंद्रित होंगी तब क्षमा की ऊर्जा निर्माण होगी।

विधि क्रमांक-२

पं. द्यानतराय नामक एक कविमना महान् शास्त्रज्ञ हुए। उन्होंने यह पद्धति प्रस्तुत की -

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर-भव सुखदाई।
गाली सुन मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै बखानो।।
कहि है बखानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करे।
घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरे।।
ने करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहीं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा।।

- दशलक्षण धर्म पूजा

अर्थात् अपने को दी गई गाली सुनकर जिसकी वाणी और क्रिया के द्वारा कोई भी प्रतिक्रिया नहीं होती, इतना ही नहीं वरन् उसके मन में भी कोई तरंग उत्पन्न नहीं होती अथवा खेद खिन्नता नहीं होती वह उत्तम क्षमा का धारी है।

पण्डित द्यानतरायजी का यह कहना है कि अगर किसी ने गाली दी अथवा गुणों को दोषों का रूप देकर पूरे गाँव भर ढिंढोरा पिटवाया, भरी सभा में उनका कथन करके हमारा अपमान भी कर दिया अथवा आजीविका के साधन छीन लिये, बाँधकर मारपीट कर दिया, हमारे ही घर से हम को निकाल दिया, इतना ही नहीं वरन् साक्षात् देह के टुकड़े-टुकड़े कर डाले तो भी उसके संबंध में मन को निर्मल रखना चाहिए। वैर धारण नहीं करना चाहिए। प्रभावशाली ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होने पर भी उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्रतिकार करने की सामर्थ्य होने पर भी प्रतिक्रिया न करते हुए क्षमा ही धारण करनी चाहिए।

ऐसी घड़ी में समतापूर्वक ऐसा विचार करना चाहिए कि ये तो मेरे ही द्वारा किये हुए दुष्कर्म हैं। अगर मैंने ये दुष्कर्म नहीं किये होते तो उपसर्ग-कर्त्ताओं (परेशान करने वालों) की क्या हिम्मत थी ? यहाँ परेशान करने वालों का कोई अपराध नहीं है। "जैसी करनी वैसी भरनी।" जिस प्रकार का फल आज भोग रहे हैं उस प्रकार के कर्म पहले कर ही चुके हैं, - इस सिद्धांत के अनुसार ये मुझे ही सहन करने होंगें। इसके विपरीत अगर मैं उपसर्ग-कर्ता के खिलाफ क्रोध करूँ तो अशांति को अखण्ड परम्परा प्राप्त होगी, यह ध्यान में लेना चाहिए - इस विचार के अनुकूल कार्य करने से क्षमा का निर्माण होगा।

विधि क्रमांक-३

यह तीसरी विधि सभी को ही अपनानी है। इसके बिना प्रयोग सफल नहीं होगा, ऐसा महान् वैज्ञानिक सर्वज्ञ भगवान का कहना है। अनेक वीतरागी वीरों के द्वारा अपनाई गई एवं पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार के द्वारा शब्दांकित की गई यह **यथार्थ विधि** -

वस्तु स्वरूप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करें।

- मेरी भावना

अर्थात् वस्तु स्वरूप का सम्यक् विचार करने से सभी प्रकार के दुख एवं संकट सुसह्य हो जाते हैं। मेरी वस्तु अर्थात् आत्मवस्तु, अचेतन देह से अतिशय भिन्न ऐसा यह चैतन्य पिंड आत्मा। मेरे मूल गुणधर्म अर्थात् ज्ञान, आनंद, क्षमादि अनंत आत्मिक गुण हैं। क्रोध मेरा गुणधर्म नहीं है अपितु वह विभाव है। सभी परिस्थितियों में साम्यभाव रखना, ज्ञाता-दृष्टा रहना, यही मेरा स्वभाव है। ऐसी आत्मानुभूति पूर्वक एकाग्रता

साध लेने पर देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत ऐसे अति प्रबल वेग से आने वाले विविध उपसर्गों के प्रखर परमाणु आत्मा से नहीं टकराते। प्रतिकूल घटनाओं की खबर भी नहीं पड़ती। ऐसा ही थोड़ी देर तक होने पर स्वयमेव स्वभाव और विभाव विभाजन होता है।

स्वाभाविक शक्ति के प्रभाव से विभावों का रूपांतर होता है, वे नष्ट भी हो जाते हैं, तथा इसी समय अनंत (अत्यधिक) मात्रा में रहने वाली आत्मिक ऊर्जा खुलकर बाहर निकलती है, और उत्तम क्षमा के साथ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अल्पाबाधत्व, अगुरुलघुत्व, आदि आत्मिक ऊर्जा के अनेक शाश्वत भंडार गृह खुल जाते हैं और तभी उत्तम क्षमा प्रयोग भी पूर्ण रूप से सफल होता है।

विशेष सूचना

गलत विधि से सर्वनाश का प्रसंग आता है। अतः विधि को पहले अच्छी तरह समझ लेना जरूरी है। द्विपायन मुनि जैसा गलत प्रयोग नहीं करें। उनके साथ ऐसा हुआ था कि उनकी ही क्रोधाग्नि से द्वारिका नगरी जलकर राख होने वाली है, ऐसी भविष्यवाणी सुनकर द्विपायन कुमार ने मन ही मन ऐसा निश्चय किया कि अब मैं उत्तम क्षमा के उत्तमोत्तम प्रयोग करूँगा और उपर्युक्त किसी भी शास्त्रोक्त विधि का अनुसरण न करते हुए ही उन्होंने प्रयोग करना प्रारंभ किया। वह इस प्रकार है - द्विपायन कुमार द्वारिका छोड़कर दूर चले गये और वहाँ उन्होंने दिगम्बर वेश धारण करके कठिन तपस्या की जिससे उन्हें तेजस ऋद्धि प्राप्त हो गईं लेकिन इन सभी प्रकार की विधियों से भी उनके अन्दर की क्रोध की ज्वाला (अनंतानुबंधी कषाय) शांत नहीं हुई। द्वारिका के बाहरी उपवन में वे एक दिन तपस्या कर रहे थे, तभी मद्य प्राशन किये हुए यादव कुमारों ने - "यही है वह द्वारिका को आग लगाने वाला द्विपायन", इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते (बकते-बकते) उनकी तरफ पाषाण परमाणु के बॉम्ब फेंक दिये। तब द्विपायन मुनि के अन्दर बहुत बड़ा विस्फोट हुआ। सभी ओर तबाही मच गई। क्षणार्थ में ही अनेक निरपराध जीवों के साथ-साथ, सोने की द्वारिका नगरी और स्वयं द्विपायन मुनि भी जलकर राख हो गये।

इसीलिये प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक ही करना चाहिए। आदर्श प्रयोगों का बारीकी से निरीक्षण करना चाहिए। प्रात्यक्षिक पूर्व जानकारी, चित्रों के अनुसार योग व उपयोग हो तो प्रयोग बहुत ही आसान हो जाता है। उत्तम क्षमा के प्रत्यक्ष प्रयोग महान् वीतरागी वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किये हैं। मन की प्रयोग पंजिका में संवेदना की कलम से उनके सुन्दर चित्र बना लेने चाहिये। एतदर्थ यहाँ कुछ चित्र संकेत दिये जा रहे हैं।

चित्र संकेत :-

१. भव-भव में कमठ के द्वारा घोर उपसर्ग किये जाने पर भी पार्श्वनाथ के जीव ने हर बार क्षमा ही धारण की थी, उनके क्रमशः चित्र बनायें।

२. हिरण समझकर शिकार के लिये आये हुए जरत्कुमार ने तीर से श्रीकृष्ण का हृदय ही छेद दिया, गलती समझने पर वह बहुत पछताया, अविलम्ब तीर दूर करने के लिये सामने उपस्थित हुआ, लेकिन अनंत वेदना सहने वाले श्रीकृष्ण ने उनसे फौरन कहा - 'हे जरद् ! तुम यहाँ से तुरंत निकल जाओ वरना पानी लाने गया हुआ बलराम आते ही तुम्हें मार डालेगा।' भावी तीर्थंकर भगवान के लिए शोभनीय ऐसी ही उनकी यह भगवती क्षमा थी। उस भगवती क्षमा की मानो प्रतिकृति (मॉडेल) ही खड़ी कर देनी चाहिए।

३. लाड़-प्यार के राजसी वैभव में पले हुये सुकौशल ने भरे यौवन में ही जैनेश्वरी दीक्षा धारण की, यह उनकी माता को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। वह बहुत ही क्रुद्ध हो गई और उस क्रोधाग्नि में ही मरण को प्राप्त हुई तथा अगले जन्म में बाघिन बनकर अपने लाडले को ही खाने लगी, लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी सुकौशल मुनिराज ने क्षमा ही धारण की। उनकी आकृति बनानी चाहिए।

४. मुक्तिपुरी का राज्य प्राप्त करने की कोशिश में जुटे हुये चाणक्य मुनि के गृहस्थावस्था के राजवैरियों ने उनके चारों ओर गोबर के कण्डे रचाए और उनमें आग लगा दी, फिर भी मुनि शांत ही रहे। इसका एक चित्र बनायें।

५. मंत्रियों की कूटनीतियों में फंसे हुये राजा ने अभिनन्दनादि पाँच सौ मुनिराजों को कोल्हू की चक्की से निचोड़ दिया था, इस दृश्य को रेखांकित करें।

इनके अतिरिक्त गजकुमार, सुकुमाल, यशोधर, समन्तभद्र, पण्डित टोडरमल इत्यादि वीतरागी वैज्ञानिकों ने अद्भुत प्रात्यक्षिक प्रस्तुत किये हैं, उनमें से हमें जो रेखाकृति भावविभोर करे, उसका चित्र बना सकते हैं।

निष्कर्ष : -

१. प्रत्येक भव्य जीव क्षमा स्वरूपी शाश्वत आत्मिक ऊर्जा का निर्माण कर सकता है।

२. क्षमावान ही वास्तविक बलवान और धनवान होता है।

- शुद्धात्म सदन, नेमिनाथ नगर, विश्रामबाग, सांगली-४१६४१५

चैतन्य-विस्तार

- डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'

एक जीवन चेतना का विश्व में विस्तार है।
विश्व के हर क्षेत्र में चेतना का संचार है।।
खींचते इस चेतना को सदा ही यह प्राण सबके,
खींचने की शक्ति के अनुसार पाते शक्ति हैं वे,
इसी चेतन शक्ति का इस प्राण पर अधिकार है।
एक जीवन चेतना का विश्व में संचार है।।
चैतन्य का बल मचलता है प्रबलतम तूफान में,
चैतन्य ही यह खेलता है आँधियों के प्राण में,
गर्जना चैतन्य की ले सिन्धु यह गतिशील है,
जीव सागर का भयंकर चेतना विस्तार है।
विश्व के हर क्षेत्र में चैतन्य का संचार है।।
खींचने की शक्ति पृथ्वी की बंधी इस डोर से,
उड़ रहे पक्षी गगन में चेतना के जोर से,
कड़कड़ाती बिजलियां घनघोर नभ की गर्जना,
अठखेलियां हैं चेतना की उसी का अभिसार है।
एक जीवन चेतना का विश्व में विस्तार है।।
जन्म लेता है नया बालक मधुर मुस्कान ले,
चैतन्य की गरिमा समेटे एक अविरल प्राण ले,
और जीवन की मधुर यात्रा सतत चलती रही,
चैतन्य बसता प्राण में चैतन्य मय व्यवहार है।
एक जीवन चेतना का विश्व में विस्तार है।।
चैतन्य की अंगड़ाइयों से डोल जाती भूमि है,
गुप्त चेतन शक्तियों को खोल जाती भूमि है,
चेतना जब थरथराती महल होते धराशायी,
भूकम्प भी यह चेतना की शक्ति का उद्‌गार है।
एक जीवन चेतना का विश्व में विस्तार है।
विश्व के हर क्षेत्र में चैतन्य का संचार है।।

- डी-११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

रूप-नगर की बाट में

- डॉ० गणेशदत्त सारस्वत

समझ-बूझकर पग धरना रे! रूप-नगर की बाट में।
भाँति-भाँति के वेश बनाए कितने ही हैं पाहुने।
तक्षक के विष से पूरित हैं लेकिन बड़े लुभावने।
ऊपर से तो भरे-भरे हैं अन्दर से पर पोल हैं -
दूर देश के ढोल-सदृश लगते हैं सजल सुहावने।
अपरिहार्य कालुष्य छिपा है इनके वेश विराट (?) में।
समझ-बूझकर पग धरना रे! रूप-नगर की बाट में।
कम न समझना यहाँ किसी को सभी एक से एक हैं।
शिवशंकर के बाराती से बढ़े चढ़े प्रत्येक हैं।
इनका डसा न बच सकता ऐसे जहरीले नाग ये -
विष उतारने के दुनियां में यद्यपि मन्त्र अनेक हैं।
पर न कारगर होगा कोई भी उनकी इस काट में।
समझ-बूझकर पग धरना रे ! रूप-नगर की बाट में।।
ठग-विद्या में निपुण सर्वथा छलने में हैं दक्ष ये।
काले कर्मों का सदैव से लेते आए पक्ष ये।
भोले-भाले पथिक बिचारे रहे न घर के घाट के -
जो भी आए उसे मिटाना, इनका तो है लक्ष्य ये।
भरे गाँठ के पूरे जो वे लुटे सदा इस हाट में।
समझ-बूझकर पग धरना रे ! रूप-नगर की बाट में।।
यहाँ सफल हो पाए वे ही जिनको जिन का ध्यान है।
मिथ्याडम्बर मृगतृष्णा का जिनको पूरा ज्ञान है।
हस्तामलक समान जिन्होंने देखा सारा विश्व है -
विरले ही वे पार हुए जाग्रत जिनका भगवान है।
नश्वरता की झलक वही हैं देख सके इस ठाट में।
समझ-बूझकर पग धरना रे ! रूप-नगर की बाट में।।

(विगत २६-१-२०१० को ब्रह्मलीन हो गये। -सम्पादक)

श्री कृष्ण

- श्री अजित कुमार वर्मा

बदी भाद्रपद अष्टमी, पावन है शुभ वार।
जन्म हुआ श्री कृष्ण का, मथुरा कारागार।।

गोकुल पहुँचे रात में, नन्द राय के धाम।
मुदित यशोदा माँ हुई, लखकर शिशु घनश्याम।।

मोर मुकुट पर बाँसुरी, अद्‌भुत रूप अनूप।
आकर्षित राधा हुईं देख अलौकिक रूप।।

वृन्दावन में है मचा, बहुत जोर का शोर।
रास रचायें गोपियाँ, राधा नन्दकिशोर।।

वृषभानु सुता के बिना, आधा है घनश्याम।
संग अगर राधा-किशन, पूर्ण कृष्ण का नाम।।

क्रूर मातुल कंस पर, किया प्रबल प्रहार।
अंत किया श्री कृष्ण ने, कर उसका संहार।।

गुरुकुल के संगी-साथी, भूल सके न नाथ।
खूब निभाई मित्रता, दीन सुदामा साथ।।

ज्ञानयोग की उद्‌धव ने, दिया अनेक मिसाल।
सम्मुख गोपी प्रेम के, चली एक न चाल।।

पार्थ के बन सारथी, किया निवारण क्लेश।
दार्शनिक-सा है दिया, गीता का उपदेश।।

(जैन परम्परा में श्री कृष्ण प्रतिनारायण के रूप में त्रेसठशलाका पुरुषों में परिगणित हैं। -सम्पादक)

- २४६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-२२६००४

पाप-मूल ही क्रोध है

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

(१)
परम अहिंसा धर्म है
हिंसा घृणित कुकर्म है।
यही धर्म का मर्म है।।

(२)
सत्य अहिंसा-पथ चुनो
सन्त, ग्रन्थ का मत गुनो।
व्यर्थ न दुख से शिर धुनो।।

(३)
गृहाधार जो कल रहे।
वही वृद्ध अब-खल रहे।
कौन राह नर चल रहे।।

(४)
आज युवक करते नहीं
वृद्धों का सम्मान हैं।
विषम समस्या सब कहीं।।

(५)
स्नेह ज्यों रवि अम्भोज का
अथवा पानी नीर का।
प्रेम रहे त्यों आपका।।

(६)
मांसाहार न कीजिये।
प्रेम सभी को दीजिये
दुखी-हाय! मत लीजिये।।

(७)
कन्या भ्रूण न मारिये।
प्यार पुत्रवत वारिये।
जग-चालन व्रत धारिये।।

(८)
पाप-मूल ही क्रोध है।
यही प्रगति अवरोध है।
तजना इसे 'अबोध' है।।

-'चन्द्रामण्डप',
३७०/२७, हाता नूर बेग,
संगमलाल वीथिका मार्ग,
सआदतगंज, लखनऊ-३

कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान

श्री दीपचन्द जैन, राष्ट्रीय महामंत्री, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद, नई दिल्ली, ने परिषद द्वारा इस प्रगतिशील कार्यक्रम का प्रारंभ किस प्रकार किया गया, उसका विवरण **'वीर'** (फरवरी २०१०) में निम्नवत दिया है -

"सामाजिक चेतना की अग्रदूत, प्रगतिशील, सुधारवादी संस्था अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद ने १६-१७ अप्रैल, २००५, में आयोजित अपने ३४वें राष्ट्रीय अधिवेशन में विवाह योग्य युवकों के अनुपात में कम होती जा रही युवतियों की संस्था पर चिन्ता व्यक्त करते हुए 'कन्याभ्रूण हत्या' को इसका एक बड़ा कारण माना था और जैन समाज में 'कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन' के लिए अभियान चलाने की आवश्यकता व्यक्त की थी। विगत चार वर्षों से परिषद द्वारा कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन के लिए अभियान चलाया जा रहा है। अभियान की शुरुआत १८ जून, २००५, को दिल्ली प्रदेश परिषद द्वारा आयोजित १०५वां संगीतमयी सामूहिक पूजन-मिलन के अवसर पर आर्यपुरा, सब्जी मण्डी स्थित दिगम्बर जैन मंदिर जी के प्रांगण में, एक बैनर - **'परिषद का जन-जागरण अभियान, कन्याभ्रूण हत्या का उन्मूलन'** के लोकार्पण से, परिषद के तत्कालीन कार्याध्यक्ष माननीय श्री हृदय विक्रम जैन जी द्वारा की गई थी।

उल्लेखनीय है कि सन २००१ में हुई राष्ट्रीय जनगणना के प्रकाशित आंकड़ों से यह बात उभर कर आई थी कि सिखों के बाद जैनों में भी लिंग अनुपात में गिरावट सबसे अधिक रही है। राजधानी दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय दैनिक समाचार-पत्र **'हिन्दुस्तान टाइम्स'** ने १२ अक्टूबर, २००५, के अंक में सन् २००१ में हुई राष्ट्रीय जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के हवाले से, मुखपृष्ठ पर हैडलाईन देते हुए, कन्याभ्रूण हत्या के लिए जैनों को भी ब्लैकलिस्ट में सम्मिलित किया था। सन् २००१ की जनगणना में राष्ट्रीय स्तर पर ५ वर्ष तक के बच्चों का लिंग अनुपात १००० नर पर ९२७ मादा का रहा था, वहीं सिखों के बाद जैनों में सबसे कम यह अनुपात ८७० मादा का रहा था। राष्ट्रीय जनगणना के आंकड़े ही नहीं जैन समाज में होने वाले वैवाहिक परिचय सम्मेलनों में भी विवाह योग्य युवकों के मुकाबले युवतियों की संख्या में कमी स्पष्ट देखी गई है और 'विवाह योग्य लड़कियों का अकाल' जैसे लेख जैन पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे थे। जैन समाज का एक वर्ग इन लेखों व

समाचारों पर नाक-मुंह सिकोड़ने लगा था, वह यह बात मानने के लिए ही तैयार नहीं था कि जैन समाज में भी 'कन्याभ्रूण हत्या' जैसे दुष्कर्म हो सकते हैं जिसके लिए कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन जैसा अभियान, जैन समाज की एक प्रतिष्ठित संस्था अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद द्वारा चलाए जाने की आवश्यकता हुई। कईयों ने तो यहाँ तक कहा कि यह जैन समाज को बदनाम करने की साजिश है, लिंग अनुपात में कमी-बढ़ती होती रहती है इसके लिए कन्याभ्रूण हत्या जैसे दुष्कर्म भी जैन समाज में हो रहे हैं, यह कहना सरासर गलत है। अपने क्रांतिकारी कार्यों के लिए जानी-पहचानी जाने वाली संस्था परिषद ने हार नहीं मानी और कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान को गति देने का निर्णय ही नहीं लिया, संपूर्ण जैन समाज को अपने निर्णय से अवगत भी कराया।

जुलाई २००५ में लश्कर (ग्वालियर) के १०० जैन परिवारों का एक सेम्पल सर्वे अविवाहितों का लिंग अनुपात जानने के लिए किया गया था, जिसका परिणाम रहा था - १०० जैन परिवारों में १६५ अविवाहित नर और १३० अविवाहित मादा हैं। इस सेम्पल सर्वे से यह बात निकल कर आई थी कि अगले २० वर्षों तक लगभग २० प्रतिशत तक विवाहयोग्य लड़कियों की कमी जैन समाज में बनी रहेगी। इस प्रकार से राष्ट्रीय जनगणना के आंकड़ो और वैवाहिक परिचय सम्मेलनों में लड़कियों की घटती संख्या की पुष्टि इस सेम्पल सर्वे से प्रमाणित हुई थी।

परिषद द्वारा चलाये जा रहे 'कन्या-भ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान' की सफलता का आकलन करने के लिए पुनः एक सेम्पल सर्वे लश्कर (ग्वालियर) के १०० जैन परिवारों में बीते चार वर्षों में जन्म लेने वाले जीवित बच्चों का लिंग अनुपात जानने के लिए, जुलाई २००६ में किया गया । सेम्पल सर्वे के परिणाम परिषद के अभियान की सफलता को दर्शाने वाले हैं। सर्वे में चार वर्ष तक के बच्चों का लिंग अनुपात बराबर ही रहा है। १०० जैन परिवारों में चार वर्ष तक के कुल १३६ बच्चे हैं, जिनमें ६६ नर हैं, वहीं ७० मादा हैं।

कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान का समर्थन समाज के अनेक बुद्धिजीवियों ने किया। उनमें से डॉ० शशिकान्त जैन (लखनऊ), अजय कुमार जैन (आरा), नीरज जैन (सतना), महेन्द्र कुमार जैन (कार्याध्यक्ष, दिगम्बर जैन महासमिति), एम. के. जैन (महामंत्री, दिगम्बर जैन महासमिति), प्रो. रतन जैन (महामंत्री, जैन महासभा दिल्ली), नरेश कुमार सेठी (अध्यक्ष, दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी), आर. के. जैन (अध्यक्ष, भारत

जैन महामण्डल) के नाम प्रमुख हैं।"

कन्या सन्तान के प्रति समाज में सामान्य रूप से असहिष्णु भाव का परिमार्जन करने के लिए तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के सम्माननीय सदस्य श्री धनेन्द्र कुमार जैन (५५७/२८३, ओमनगर, आलमबाग, लखनऊ-२२६००५) ने सकारात्मक सुझाव दिया है जिस पर भी गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना अपेक्षित है :-

"आजकल कन्या-भ्रूण हत्या न करने के लिए बहुत से विद्वान लेखक/लेखिकाओं के लेख पढ़ने को मिल रहे हैं। सबने इस जघन्य कृत्य की भर्त्सना ही की है तथा धर्म का ज्ञान भी दिया है कि यह एक धार्मिक अपराध है। हम लोग जैन धर्म के मानने वाले हैं अर्थात् अहिंसक हैं और हमें इस हिंसा से बचना चाहिए। मैं स्वयं भी इन सभी लेखकों से पूर्णतया सहमत हूँ। परन्तु केवल प्रवचन से कोई कार्य होने वाला नहीं है।

मेरे मन में एक विचार उत्पन्न हो रहा है कि क्या आदिकाल से ही जैन समाज इस हिंसक कृत्य को करता आया है ? यदि नहीं तो क्या कारण है कि अब ऐसा जघन्य कार्य करने के लिए विवश हो रहा है ? ध्यान से देखें तो कारण सुस्पष्ट हो जायेगा। लड़के वाले लड़की के माता-पिता से विवाह की बातचीत पर इस प्रकार का व्यवहार करते हैं जैसे माता-पिता के घर पुत्री ने जन्म लिया है तो इन माता-पिताओं ने कोई घोर अपराध किया हो। इस अपराध-बोध से बचने के लिए विवश होकर उन्हें यह जघन्य अपराध करना पड़ रहा है। इस कृत्य के लिए पुत्र को जन्म देने वाले ऐसे माता-पिताओं का भी बराबर का अपराध है जो कन्या के माता-पिताओं को विवाह की बातचीत पर बहुत तुच्छ दृष्टि से देखते हैं तथा अवांछित दहेज की मांग भी रखते हैं। आज तक मुझे ऐसे लेख दृष्टिगत नहीं हुए जिनमें पुत्र के माता--पिताओं को कन्या-भ्रूणहत्या का बराबर का अपराधी बताया गया हो। केवल धार्मिक शिक्षा कन्या के माता-पिताओं को ही दी जा रही है।

मनुष्य को जीवित रहने का अधिकार है तथा यह अधिकार धर्म का कोरा उपदेश देने से छीना नहीं जा सकता है। बाल काल्य में एक कथा सुनी थी, आप सबने भी सुनी होगी। उसी को लिख रहा हूँ। बहुत समय पहले एक मुनि महाराज ने चोरी न करने का प्रवचन दिया। प्रवचन के बाद उन्होंने सभी को चोरी न करने का व्रत दिलाया। सब लोग व्रत लेकर चले गए। एक व्यक्ति बैठा रहा। वह चोरी करता था।

उसने अकेले में महाराज श्री से पूछा कि 'महाराज श्री मैं तो चोरी करके ही अपनी आजीविका चलाता हूँ, मैं यह व्रत कैसे लूँ?' महाराज श्री ने उससे पूछा कि 'तुम्हें आजीविका के लिए कितनी आवश्यकता होती है?' उसने उत्तर दिया कि "मात्र चार आने प्रतिदिन।' बहुत सस्ता समय था। महाराज श्री ने उससे कहा कि 'प्रतिदिन चार आने से अधिक चोरी नहीं करूँगा, यही व्रत ले लो', तथा उस चोर ने सच्चे दिल से उसे स्वीकार किया। उसका जीवन चलता रहा। दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य से (आप स्वयं निर्णय लें) एक दिन वह राजा के महल में चोरी करने गया और उसे चार आने कहीं नहीं मिले। प्रातः काल के समय चौखट में एक चवन्नी दिखाई दी, खोदने लगा, भोर हो गयी थी, पकड़ लिया गया। राजा ने उससे पूछा कि 'क्या कर रहे थे'। उसने निर्भीकता से उत्तर दिया कि 'महाराज मैं आपके महल में चार आने की चोरी करने आया था। मुझे चार आने नहीं मिले। सब स्थानों पर अधिक मूल्यवान वस्तुएं थीं।' उसने सब स्थानों पर जो वस्तुएं थीं उनका विवरण भी बताया। उसने कहा, 'मैंने आपका अपराध किया है, आप मुझे दण्ड दें। मेरा दुर्भाग्य है कि जब चार आने दिखाई दिए भोर होने के कारण मैं पकड़ लिया गया।' राजा उसकी बात से सोच में पड़ गया तथा उसको शहर कोतवाल का काम दे दिया ताकि उसकी आजीविका चलती रहे। चूंकि वह चोर था इसलिए उसके समय (शहर कोतवाल बनने पर) चोरी इत्यादि बन्द हो गयी। यदि महाराज श्री केवल प्रवचन देते तो कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं था। उन्होंने व्यावहारिक निर्णय लिया जिसका फल सामने मिला।

मेरा स्पष्ट मत है कि केवल धर्म का उपदेश देकर कन्या-भ्रूण हत्या नहीं रोकी जा सकती। समाज को अपना उत्तरदायित्व सही तरीके से निभाना होगा। विवाह की बात में कन्या पक्ष का आदर करना होगा।"

हमारा परिवार समाज में चेतना, जाग्रति और प्रगतिशीलता का सदैव ही पक्षधर रहा है। 'वीर' के माध्यम से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद द्वारा चलाये जा रहे कन्याभ्रूण हत्या उन्मूलन अभियान में हमारी पूर्ण सहमति है।

- नलिन कान्त जैन

जिज्ञासा - श्रावकोचित आचार क्या हो

- श्री धनेन्द्र कुमार जैन

मुझको बाल्यकाल में बताया गया था कि जैन धर्म नास्तिक धर्म है क्योंकि यह ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानता। लगभग २२०० वर्ष पहले मन्दिर का निर्माण नहीं होता था, चरण बनते थे, उसी की पूजा होती थी। ऊपर छतरी का निर्माण होने पर मन्दिर कहलाता था। ऐसा सुना है कि सनातन हिन्दू धर्मावलम्बी भाइयों ने बहुत अत्याचार किए तथा हमारे पूज्य मुनियों को कोल्हू की घानी में पेरवा डाला। इस अत्याचार से बचने के लिए हम दिखावट में मन्दिर मार्गी हो गए।

ध्यान से देखा जाय तो सनातन हिन्दू धर्म में जिन बातों को अच्छा बताया गया है उनको जैन धर्म में भी अच्छा माना गया है तथा जो बातें जैन धर्म में करने योग्य नहीं मानी गई हैं, यथा झूठ बोलना, चोरी करना इत्यादि, उन सभी कार्यों को सनातन धर्म में भी अच्छा नहीं कहा गया है।

इस प्रकार दोनों धर्मों में मूल रूप से कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता है, परन्तु है बहुत बड़ा अन्तर है। सनातन धर्म में भगवान को सृष्टि का कर्ता-धर्ता मानते हैं तथा भक्ति करके भगवान को प्रसन्न करने की मान्यता है जिससे ऐसा आभास होता है कि मनुष्य पाप कर्म करके भी भगवान को प्रसन्न करके सुख की प्राप्ति कर सकता है। जैन धर्म कर्म के अनुसार फल प्राप्त होगा, यह मानता है, अर्थात् भगवान को प्रसन्न करने से मनुष्य के पापों का क्षय असम्भव है। कोई अचम्भा होगा, ऐसी जैन धर्म की मान्यता नहीं हैं। अतः सुख चाहने वाले को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे दुख की प्राप्ति हो।

आजकल जैन धर्मावलम्बियों में भी भक्ति का रस बढ़ता जा रहा है जिसमें बहुसंख्यक सनातनधर्मी हिन्दूओं की नकल करने की प्रवृत्ति का बहुत बड़ा योगदान है। बहुत से हमारे आचार्यश्री भी इसमें योगदान कर रहे हैं। वे नाना प्रकार के विधान करा रहे हैं और भगवान की भक्ति से पुण्य लग रहा है ऐसा बताते हैं।

दिनांक २२ मार्च २०१० के **दैनिक जागरण** में एक सचित्र समाचार प्रकाशित हुआ है- इलाहाबाद में तृतीय तीर्थंकर संभवनाथ के निर्वाण महोत्सव पर निर्वाण लड्डू का भोग लगाते भक्त।

मैं विद्वान जन से यह जानना चाहता हूँ कि हम गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं के लिए क्या करना उचित है और क्या अनुचित ? क्या हमें भक्ति करने से पुण्य लाभ मिलेगा ? क्या भोग लगाना और प्रसाद वितरण करना जैन सिद्धान्त सम्मत् पूजा-अर्चना का अंग हैं?

- ५५७/३३, ओमनगर, आलमबाग, लखनऊ-५

जन्म जयंती पर स्मरण

१. श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन की ९२वीं जन्म जयंती

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के संस्थापक-महामंत्री स्मृतिशेष श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन जी की ९२वीं जन्म जयंती पर समिति की साधारण सभा की ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में शुक्रवार दिनांक १-१-२०१० को आयोजित बैठक में उनका पुण्य स्मरण किया गया। उनके चित्र पर अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन द्वारा माल्यार्पण किया गया तथा अन्य उपस्थित महानुभावों द्वारा पुष्पांजलि अर्पित की गई।

श्री नरेश चन्द्र ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बताया कि सामाजिक कार्य करने हेतु वे ही उनके प्रेरक रहे और उन्हें आवश्यक सहयोग देते रहे। लेखन के लिए भी उन्हें प्रेरित किया। श्री धनेन्द्र कुमार जैन ने उनकी निर्भीकता का जिक्र करते हुए कहा कि आचार्य श्री सौरभसागर से मंगलाष्टक को सही करने के लिए श्री अजित प्रसाद जी ने कहा था। डॉ. शशि कान्त ने बताया कि वह चाचा जी के निधन से चार वर्ष से शून्यता अनुभव कर रहे हैं और अनुज श्री रमा कान्त के निधन से ६ माह से विशेष शून्यता का अनुभव कर रहे हैं। चाचा जी स्वतन्त्र चिन्तन और लेखन को प्रोत्साहित करते थे। श्री लूणकरण नाहर जैन ने अपनी काव्यांजलि "जो शोधादर्श के प्रधान सम्पादक अजित प्रसाद जैन महान थे" अर्पित की और भजन "जिसको तू खोज रहा बन्दे, वह मालिक तेरे अन्दर है। बाहर के मन्दिर तो कृत्रिम हैं, सच्चा मंदिर तो अन्दर है।" से वातावरण को रससिक्त किया।

अंत में, महामंत्री नलिन कान्त जैन द्वारा समागत महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त किया गया। अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उन्होंने यह भावना व्यक्त की कि श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन जी की स्मृति समिति के कार्यक्रमों को अग्रसारित करने में और **शोधादर्श** की पत्रकारिता के क्षेत्र में निर्भीक छवि बनाये रखने में सदा प्रेरणा देती रहेगी।

२. इतिहास-मनीषी डॉ० ज्योति प्रसाद जैन की ९८वीं जन्म जयंती

शनिवार दिनांक ६ फरवरी, २०१० ई., को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ९८वीं जन्म जयंती पर उनका पुण्य स्मरण किया गया। डॉ. विजय कुमार जैन, उप-आचार्य, राष्ट्रीय संस्कृत

संस्थान, द्वारा अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में यह प्रस्तावना की गई कि उनकी जन्म शताब्दी तक उनके सभी अप्रकाशित लेख आदि का प्रकाशन यदि सुनिश्चित किया जा सके तो यह उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

श्री नलिन कान्त जैन ने स्मृतिशेष डॉ. साहब के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दिया और बैठक का संचालन किया।

वयोवृद्ध साहित्यकार श्री विष्णुदत्त शर्मा ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि डॉ. साहब ने केवल स्वयं ही इतिहास और संस्कृति के मर्मज्ञ के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित नहीं की वरन् उन्होंने अपनी सन्तति को भी इसके संस्कार प्रदान किये।

डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत' ने अपनी काव्यांजलि प्रस्तुत करते हुये कहा-

इतिहास के सार्थक रचयिता
बन गये इतिहास के प्रेरक मनीषी
शत बार वन्दन है तुम्हें, शत बार वन्दन!
लिख गये जो अमिट गाथा स्वर्ण अक्षर में धरा पर,
वह संजोती ही रहेगी जगत का सौभाग्य मन्दिर,
अखिल कुदरत कर रही श्रृंगार अपना आज तेरी ज्योति लेकर,
देखकर यह प्रकृति पूजित रूप तेरा,
मुग्ध मेरा मन विमोहित हो रहा है,
कर रहा वन्दन पुनः स्वीकार कर लो,
'प्रशांत' में भी ज्योतिमय निज रूप भर दो।

डॉ. (श्रीमती) राका जैन ने अपनी भावपूर्ण कविता प्रस्तुत की जिसमें मानवोचित आचरण और व्यवहार का सहज निरूपण किया गया।

डॉ. शशि कान्त ने बताया कि ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के माध्यम से डॉ. साहब के अप्रकाशित ग्रंथों को प्रकाशित करने की योजना विचाराधीन है। डॉ. साहब के प्रकाशित लेखादि का संकलन भी प्रकाशित किया जाना अभीष्ट है। सम्प्रति उनकी कृति Jainism through the Ages का सम्पादन किया जा रहा है और यथासंभव इसे उनकी पुण्यतिथि ११ जून, २०१०, को प्रकाशित करने का विचार है।

स्मृति गोष्ठी का प्रारंभ श्रद्धेय डॉ. साहब के चित्र पर माल्यार्पण और पुष्प अर्पित करने के उपरान्त उनकी रचनाओं 'वीतराग स्वरूपम्' व 'जय महावीर नमो' के सामूहिक गायन के साथ हुआ। अंत में, श्री नलिन कान्त जैन द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ बैठक समाप्त हुई।

- नलिन कान्त जैन

७५वें जन्मदिवस पर भावपूर्ण श्रद्धांजलि

'अजातशत्रु' थे मनीषी रमा कान्त जैन

– श्री रविमोहन त्रिवेदी

एक और मनमीत मुंह मोड़ गया,
ओउम का प्रकाश जाने किधर गया।।
तीन वेदों के थे वे ज्ञाता,
एक सरल साधु कहीं खो गया।।

ये वाक्य सिर्फ काव्य की पक्तियां ही नहीं हैं बल्कि ये पंक्तियां मेरे लिए सम्बल व निराश मन को जीने की प्रेरणा देने वाली थीं जब पितृतुल्य संत प्रवर श्रीयुत रमा कान्त जैन जी ने २४ दिसम्बर दिन मंगलवार सन् २००२ में मेरे पिताजी डॉ. ओमप्रकाश त्रिवेदी के आकस्मिक निधन के उपरान्त मेरे आवास पर पधार कर मेरे सिर को सहलाते हुए ढाढस बंधाया था तो मुझे थोड़ी देर के लिए लगा कि एक पिता का साया सिर से उठा तो दूसरा साया व संरक्षण अपने ऊपर बरकरार है। किन्तु मुझे लगता है कि मेरा ही कुछ भाग्य खराब है कि २६ मई २००६ को हमारे सिर से पितृतुल्य श्री जैन का साया भी छिन गया। जब उनके अग्रज डॉ. शशि कान्त जैन ने मुझे २७ मई को प्रातः ५ बज टेलीफोन पर सूचना दी कि मेरे अनुज नहीं रहे तो मैं एकदम अवाक रह गया। दैनिक कार्यों से शीघ्र निपट कर उनके अंतिम दर्शन को ज्योति निकुंज पहुँच कर उन्हें बैकुण्ठ धाम पर अश्रुपूरितर नेत्रों से अंतिम विदाई दी।

श्री जैन कद से तो छोटे, सांवले शरीर, आँखों पर मोटा चश्मा, हमेशा प्रसन्नचित्त रहने वालों में बहुत बिरले व्यक्ति थे। लगभग दो दशक के उनके सानिध्य लाभ में कभी भी कहीं भी उनके मत्थे पर चिंता की लकीर नहीं देखी और न ही कभी उजास, उदास व निराश मन देखा। इतने विराट व्यक्तित्व के वे धनी थे कि सब कुछ हर्ष-विषाद, अच्छाई-बुराई, निन्दा सब अपने में भगवान शंकर की भांति पचाकर मदमस्त रहते थे और अपनी क्षणिकाओं के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य कसते और लोगों का मनोरंजन करते थे। सचिवालय में उप सचिव पद से रिटायर्ड हुए थे लेकिन मान-अभिमान उनको कहीं दूर-दूर तक छू नहीं पाया था। जैन समाज का वे जबर्दस्त प्रतिनिधित्व करते थे तथा **शोधादर्श** जैसी चातुर्मासिक पत्रिका में बहुत लगन व परिश्रम से उसकी गुणवत्ता को बरकरार रखते थे।

हमारे पिताश्री डॉ. ओकप्रकाश त्रिवेदी, पूर्व रीडर, हिन्दी विभाग, लविवि, (सुधिशेष) के संपर्क में जब श्री जैन आये तो वार्तालाप के दौरान वे उनसे एक साल जूनियर निकले व उम्र आदि पर जब चर्चा हुई तो मेरे पिता भी उनसे एक या दो वर्ष बड़े निकले तो वे अपने बड़े भाई के समान उनसे घुल मिल गये और अक्सर मेरे आवास ओम निवास, ११४ मवैया, में आते तो पिताजी से घण्टों विभिन्न पहलुओं पर वार्ता होती। उसी बीच यदि मैं मिल जाता तो पुत्रवत् स्नेह देकर घर परिवार व व्यवसाय की कुशल क्षेम पूछते व समय-समय पर सुझाव व आदेश-निर्देश से अवगत कराते रहते थे। साहित्यिक गोष्ठियों व कविगोष्ठी में भी उनकी क्षणिकाएं सुनने को मिल जाती थीं तथा समाज, राष्ट्र व साहित्य पर भी विशेष चर्चा होती रहती थी। मिलनसार इतने थे कि अक्सर वे पिता जी के न रहने पर मेरे घर आ जाते और पत्नी बच्चे सहित सबकी कुशल पूछते व बहू से बातचीत करते। अक्सर मैं झेंप जाता था कि वे बड़े होकर पिता समान स्वयं आ जाते हैं और मैं छोटा होकर पत्रकारिता व पारिवारिक जिम्मेदारियों के मकड़जाल में फंस कर नहीं पहुँच पाता तो इसके लिए वे हमें शर्मिंदा नहीं होने देते और तर्क देते थे कि बेटा तुम प्राईवेट जॉब व गृहस्थी के फंसाव में हो। मैं तुम्हारी मजबूरी समझता हूँ और मैं ठहरा रिटायर्ड आदमी और पारिवारिक जिम्मेदारियों से निवृत्त होकर विचरण करता हूँ। इसमें तुम्हें शर्मिंदा होने की कोई जरूरत नहीं है। यही नहीं, जब वे अत्यधिक व्यस्त होते तो भी वे फोन करके कुशलक्षेम पूछने से नहीं चूकते थे। वे कोई नई क्षणिकाएं बनाते तो फोन पर ही सुनाते थे। मेरे मन मस्तिष्क में ढेरों स्मृतियां रह-रह कर याद आती हैं जिनका समावेश करने से आलेख लम्बा भी हो जायेगा और स्याही व कागज भी कम पड़ जायेगा।

कुल मिलाकर स्व. रमा कान्त जैन एक निश्छल, सहज, सरस व सरल हृदयवाले सन्त पुरुष थे और अहिंसा के प्रबल समर्थक थे। जैन धर्म से जुड़े रहने के कारण अध्यात्म संस्कृति में विशेष रुचि थी। वे छोटे से छोटे व बड़े से बड़े आदमी के साथ आदर, स्नेह व सौहार्दपूर्ण प्रेम व्यवहार करते थे और राग, द्वेष, ईर्ष्या उन्हें छू तक नहीं पायी थी। कुल मिलाकर अगर हम कहें कि वे आजातशत्रु थे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसे महामनीषी जैन के संक्षिप्त जीवन व कृतित्व पर हम एक विहंगम दृष्टि डाल रहे हैं। १० फरवरी को उनका ७५वां जन्मदिवस है जो आज हमारे बीच सशरीर नहीं बल्कि सुधिशेष मात्र हैं। श्री जैन का जन्म १० फरवरी १९३६ को मेरठ शहर में एक मध्यमवर्गीय धर्मनिष्ठ जैन परिवार में हुआ था। आपके

पिता डॉ. ज्योति प्रसाद जैन इतिहासवेत्ता थे, माता श्रीमती अनन्त माला एक धर्मपरायण महिला थीं। लखनऊ विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर सन् १९५४ से आप सचिवालय में कार्यरत रहकर विभिन्न विभागों व पदों को सुशोभित करते हुए फरवरी १९९४ में उपसचिव, उ.प्र. शासन, के उच्च पद से ससम्मान सेवानिवृत्त हुए।

सेवानिवृत्त होने के उपरान्त आप सामाजिक, धार्मिक व साहित्यिक कार्यों में जीवन पर्यन्त रमे रहे। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी **शोधादर्श** का निरंतर गुणवत्तापरक सम्पादन कर अपनी विद्वतापूर्ण शैली का परिचय दिया। इसके साथ ही साथ आपने कई पुस्तकों का संपादन किया। **गिलास आधा भरा है** का सृजन कर प्रकाशन किया जिसको पाठकों ने खूब सराहा। कविगोष्ठियों में क्षणिकाओं के माध्यम से वे विसंगतियों पर कुठाराघात तो करते ही थे उसमें उचित समाधान के साथ श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन भी करते रहे तथा अनेक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर उनका वन्दन, अभिनन्दन व सम्मान भी हुआ।

श्री जैन जैसे बिरले ही लोग जन्मते हैं जिन्होंने न सिर्फ पिताश्री के कार्यों को आगे बढ़ाया बल्कि उससे काफी आगे निकल चुके थे ये महापुरुष। साहित्य व समाज को अभी इनसे बहुत आशाएं थी किन्तु नियति ने असमय ही इन्हें २६ मई २००९ को हम सबसे हमेशा-हमेशा के लिए जुदा कर दिया। उनकी ७४वीं जन्म जयंती के अवसर पर मैं इस संत प्रवर को अपनी सच्ची व भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कुदरत के इस नियम का अहसास करता हूँ कि शाश्वत सत्य यही है भले हम इसे देर से स्वीकारें लेकिन स्वीकारना तो पड़ेगा ही -

परिवर्तिन या संसारे।
मृतःको वा न जायते।।
सजातो येन जातेन।
जाति वंश समुन्नतम्।।

रमा कान्त जैन जी आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनके द्वारा किये गये कार्य सदैव हमें प्रेरणा देते रहेंगे, उनकी ढेरों स्मृतियों के बीच वे सदैव अमर रहेंगे।

- दैनिक राष्ट्रीय स्वरूप, लखनऊ, १० फरवरी, २०१०

साहित्य सत्कार

The Glorious Heritage of India (In memory of Prof. R.C. Sharma): Editor - Dr. S. D. Trivedi; Pub. Agam Kala Prakashan, 34, Central Market, Ashok Vihar, Delhi-110052; 2010; Price Rs. 5500/-; Two volumes, pp. Iv + 638, 87 Plates

The Glorious Heritage of India has been brought out in two volumes in memory of Prof. Dr. Ramesh Chandra Sharma by Dr. S. D. Trivedi, an admirer and friend of Prof. Sharma.

Prof. Sharma was also an intimate friend of mine. We had known each other since June 1960 when he joined the State Museum at Lucknow. He was closely associated with research and intellectual activities at our place, and was honoured and felicitated as the scholar and intellectual *par excellence* for his distinguished scholarship at a public function, by the 'Ananta-Jyoti Vidayapitha', on May 10, 1987, at Lucknow. Born on July 29, 1936, he did M.A. from the Banaras Hindu University in 1957 and was awarded the degree of Ph.D. by the University of Calcutta in 1983. His doctoral thesis **'Buddhist Art of Mathura'** is a widely acknowledged work on early Buddhist art and iconography. Having held the position of Director of Museums at Mathura, Lucknow, Kolkata, Varanasi and New Delhi, after retirement he settled at Varanasi in 1996 and directed *Jnana Pravaha* Centre of Cultural Studies, till his demise on May 28, 2006.

Both the volumes contain tributes to Dr. Sharma by his family members and close associates. Each volume contains 30 learned papers by eminent scholars of Indian history, art and archaeology. For those interested in Jainology, the papers on 'Saraswati in Jaina tradition and art' by Dr. Maruti Nandan Pd. Tiwari, 'Jain Teerth Panel at Kumbharia' by Dr. Alok Tripathi, 'Contribution of Mathura to Jaina Art' by Dr. S. D. Trivedi and धार्मिक समभाव का प्रतीक कंकाली टीला by Dr. Vandarna Awasthi, would be found interesting. Dr. A. L. Srivastava has indicated in his paper ' An Enigmatic Sculpture on a Stone Water Reservoir' a folk custom of making large water reservoirs or tanks meant for drinking water for cattle in villages in Uttar Pradesh.Dr.

Shail Nath Chatuvedi has, in his paper, shed light on the life and work of Raja Patanimal of 18-19th century, otherwise litle known.

My own paper on 'Research Methodology' has been included on pages 557-561 in volume II. The secound sentence in the opening paragraph should read: *Our curiosity and inquisitiveness prompt us, firstly, to search or find out something the presence of which is suspected; that is empirical and grossly objective.* There are also some other minor printing mistakes which the reader may himself comprehend.

On the whole, the volumes have been finely brought out with valuable information and illustrations, befitting to the memory of Dr. Sharma. For this the learned contributors and the Editor, as also the publishers, deserve wholehearted appreciation and congratulations.

Victory over Violence: by Acharya Gopilal Amar; Pub. Shri Bharatvarshiya Digamber Jain Mahasabha, Shri Nandishwar Flour Mills Compound, Mill Road, Aishbagh, Lucknow, 226004; Dec. 2009; Price Rs. 50/-; pages 124

The learned author has made a study of Ahimsa and Jainism with special reference to the universal problem of violence. It is in 8 chapters, namely, Jainism, thy name is Ahimsa; Ahimsa: the whys and wherefores; Identifying Ahimsa and violence; Ahimsa, the spirit of Jaina ethics; Ahimsa and the values of life; Ahimsa: individual to universal; Ahimsa and the environment; and Ahimsa reviewed.

He has rightly observed that "Ahimsa is not a political tool. It is a moral philosophy. An individual practtioner of Ahimsa can be destroyed but the concept of Ahimsa remains indestructible because it is a positive value." The study ought to remove misunderstanding about the concept of non-violence and affirm the positive aspect which may create an atmosphere of peace and universal love.

The Future of India : by Dr. V. Manmohan Reddy; Pub. The Mother's Integral School, Vidyanagar, Hyderabad-44; 2009; pp. 46

The learned author has made deep study of Sri Aurobindo's thought and philosophy. He has examined the various facets of modern civilization. He has given relevant quotations from Sri Aurobindo's

works, dealing with the ills of Indian political, economic and socio-religious condtions. In his view, unless the present age ceases to be dominated by the money mania, there cannot be peace.

श्रीमदनिरुद्धायनम् (महाकाव्यम्): पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, ई ५१, महानगर विस्तार, लखनऊ-२२६००६; २००६; मूल्य ६०/-; पृष्ठ १४४

पं० काशीनाथ गोपाल गोरे ने संस्कृत भाषा में भगवान श्रीकृष्ण के पौत्र और मदनावतार प्रद्युम्न के सुपुत्र श्री अनिरुद्ध के जीवन पर २३ सर्गों में इस महाकाव्य को निबद्ध किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के पूर्व साहित्य विभागाध्यक्ष प्रो. रमाशंकर मिश्र और उसी विश्वविद्यालय के अनुसंधान संस्थान के निदेशक डॉ० राजाराम शुक्ल तथा सेंट एन्ड्रयूज़ कालेज गोरखपुर के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. माधव अनन्त फणके द्वारा इस महाकाव्य के काव्य सौष्ठव की समीक्षा की गई है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में इस कृति का विशिष्ट स्थान है। उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा इसके प्रकाशन में सहयोग किया गया है।

पं. गोरे प्रशासकीय सेवा में रहे परन्तु उन्होंने हिन्दी, मराठी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं में अपनी लेखन प्रतिभा का उपयोग भी किया। **शोधादर्श** में उनकी दो कृतियों **व्यवहारसूक्ति** और **कलिगीता** का परिचय दिया जा चुका है। पौराणिक आख्यानों और संस्कृत भाषा के प्रेमियों को पं. गोरे का प्रस्तुत काव्य मोद प्रदायी होगा।

श्रद्धा के सुमन (संस्मरण) : साहित्य भूषण डॉ० परमानन्द जड़िया; प्र०-मधूलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८; जनवरी २०१०; मूल्य ७०/-; पृष्ठ ८०+४

इस कृति में डॉ० परमानन्द जड़िया ने २४ साहित्य मनीषियों के सम्बन्ध में अपने अन्तरंग संस्मरण निबद्ध किये हैं। श्री विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद' ने अपनी प्रस्तावना में इस कृति की साहित्यिक दृष्टि से समीक्षा की है। जिन साहित्य मनीषियों के प्रति डॉ० जड़िया ने अपने श्रद्धा सुमन प्रस्तुत किये हैं उनमें से कुछ से मेरा भी परिचय-सम्पर्क रहा, जैसे कि श्री योगेश दयालु, श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस', श्री दयाशंकर मिश्र, डॉ० ओमप्रकाश त्रिवेदी और पं. शिवशंकर मिश्र 'करुण'। श्री रमा कान्त मेरे अनुज ही थे। उनके सम्बन्ध में **एक सदाबहार इन्सान** शीर्षक से जो संस्मरण डॉ० जड़िया ने दिया है वह बहुत ही भावपूर्ण है।

चौरासी वर्ष की वय में भी डॉ० परमानन्द जड़िया साहित्य सृजन में प्रवृत्त हैं और अपने मित्र साहित्यकारों के सम्बन्ध में एक आन्तरिक आत्मीयता का भाव रखते हैं,

यह एक विशिष्टता है जो सामान्यतः साहित्यकारों में भी नहीं पाई जाती। इस उपलब्धि के लिए उन्हें हार्दिक साधुवाद!

वैशाली के गणनायक महावीर : डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, सं. श्री अनिल जैन; **अध्यात्म योग विद्याः** डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, सं. पं. शान्तिकुमार पाटिल; प्र. समन्वयवाणी जिनागम शोध संस्थान, १२६, जादौन नगर 'बी', स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर-३०२०१८

वैशाली के गणनायक महावीर में विद्वान लेखक ने विविध ऐतिहासिक स्रोतों के आधार से यह प्रतिपादित किया है कि महावीर की जन्मभूमि वासोकुण्ड वैशाली थी। पुस्तक अक्टूबर २००६ में प्रकाशित हुई। ४७ पृष्ठों में विषय का प्रतिपादन किया गया है, संदर्भ ग्रन्थ सूची भी दी गई है। वासोकुण्ड से प्राप्त भगवान महावीर की प्रतिमा का चित्र और सात मानचित्र प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने में सहायक हैं।

वैशाली के जन मानस में महावीर के प्रभाव का आकलन वैशाली के आस-पास के क्षेत्र में प्रचलित लोक गीतों के आधार से विशेष रूप से किया गया है। वासोकुण्ड में क्षत्रिय कुल गीतों में भी महावीर की पूजा-अर्चना का उल्लेख स्पष्ट है। आगम, पुरातत्त्व, इतिहास और भौगोलिक स्थिति यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि वासोकुण्ड वैशाली ही भगवान महावीर की जन्मभूमि थी। वैशाली की लोक संस्कृति में भगवान महावीर के सम्बन्ध में डॉ० बंसल के लेख **शोधादर्श** में भी प्रकाशित हुये हैं। वासोकुण्ड-वैशाली को भगवान महावीर की जन्मस्थली के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए डॉ. बंसल की यह पुस्तक विशेष महत्व रखती है।

अध्यात्म योग विद्या में डॉ० बंसल ने ८ अध्यायों में जैन दृष्टि से अध्यात्म विद्या का निरूपण किया है। इसका प्रकाशन जुलाई २००६ में हुआ। यह ११२ पृष्ठों में निबद्ध है। जैसा कि लेखक ने स्वयं कहा है, विषय अत्यन्त गूढ़ और रहस्यमय है, अतः जो विवेचन प्रस्तुत किया गया वह संकेतात्मक है। यह पुस्तक अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों के प्रति जिज्ञासा जागृत करने में सहायक होगी।

भाषालोके नैनागिरिः प्र. श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, नैनागिरि

म.प्र. के छतरपुर जिले के दक्षिण में नैनागिरि नाम का ग्राम स्थित है। यह एक प्राचीन तीर्थ स्थल है और सिद्धक्षेत्र के नाम से विख्यात है। अनुश्रुति है कि भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण यहाँ आया था। ५६ पृष्ठों में इस पुस्तक में इस क्षेत्र का विवरण विभिन्न मनीषियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। श्री संजय जैन, राजधानी

इलेक्ट्रानिक्स, वर्णी कॉलोनी, सागर ४७०००२ द्वारा इसकी प्रति उपलब्ध कराने के लिए हम आभारी हैं।

जैन विरासत (Jain Heritage): डॉ. कपूरचंद जैन एवं डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन; प्र. वीर अजित प्रसाद जैन, क्षेत्रीय मंत्री, भारतीय जैन मिलन, क्षेत्र संख्या ७ द्वारा छोटेलाल मेहरचंद जैन, गुड़बाजार, रेवाड़ी (हरियाणा); २००६; मूल्य रु. ३०/-; पृष्ठ ५२

लेखक द्वय ने बड़ी कुशलतापूर्वक प्राचीनतम काल से वर्तमान काल तक जैन धर्म और संस्कृति का एक विहंगम दृश्य इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। पुस्तक सचित्र है और भाषा सरल है। "डाक टिकटों पर जैन संस्कृति" पुस्तक का विशेष आकर्षण है जिसमें मई १९३५ से १४ अक्टूबर २००६ तक जारी किये गये डाक टिकटों का सचित्र विवरण दिया गया है।

आप पूछें हम बतायें: डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन; प्र. जैन मिलन आस्था परिवार, खतौली, २५१२०१; २००६; पृष्ठ २०

जैन इतिहास और संस्कृति पर १०१ प्रश्नों के उत्तर के रूप में डॉ. ज्योति जैन ने जैन धर्म, संस्कृति और समाज के सन्दर्भ में जन साधारण के लिए उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराई है।

जैन न्याय-दर्शन प्रवेशिका, घर-घर चर्चा रहे ज्ञान की (प्रथम खण्ड वर्ष ०७-०८) और **Jinagama Pravesa** : ब्र. संदीप जैन सरल; प्र. अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, बीना-४७०११३; २००६

तीनों ही पुस्तकें ब्र. संदीप सरल द्वारा प्रणीत हैं। **जैन न्याय-दर्शन प्रवेशिका** में जैन न्याय-दर्शन के जटिल एवं गूढ़ विषयों को प्रश्नोत्तर शैली में सरस, सरल एवं सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। १० अध्यायों में २७५ प्रश्नोत्तरों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया गया है।

घर-घर रहे चर्चा ज्ञान की में वर्ष २००७-२००८ में जो सामग्री पैम्फ्लेटों के माध्यम से प्रसारित की गई थी उसका संकलन किया गया है। प्रत्येक पैम्फ्लेट में मूल सूत्र के आधार से धर्म की महिमा और धर्म का स्वरूप बताया गया है, चार पुराण सूक्तियां दी गई हैं, वर्णी-वणी से ५ सूत्र दिये गये हैं, जिनागम प्रवेश से सम्बन्धित ६ प्रश्नोत्तर हैं जिनमें जैन धर्म से सम्बन्धित सामान्य जिज्ञासा का समाधान किया गया

है तथा अन्त में बाल संस्कार के शीर्षक से बालकों की जानकारी के लिये कोई आख्यान आदि दिया गया है।

Jinagama Pravesa ब्र. संदीप सरल की हिन्दी में प्रकाशित **जिनागम प्रवेश** पुस्तक का श्री ज्ञानचन्द बिल्टीवाला द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी अनुवाद है और इसका सम्पादन डॉ. राजकुमार छाबड़ा द्वारा किया गया है। जैन धर्म, सिद्धान्त और इतिहास विषयक विभिन्न विषयों को ३०१ प्रश्नोत्तरों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। दो परिशिष्टों में जैन इतिहास और जैन संघ के विषय में जानकारी दी गई है। जिस रूप में ये प्रश्नोत्तर प्रस्तुत किये गये हैं, वह सामान्य जिज्ञासु की जिज्ञासा का समाधान करने में उपयोगी हैं। अंग्रेजी में रूपान्तर उपादेय है।

दो कदम लक्ष्य की ओरः श्रीमती रतन चोरडिया; प्र. श्रीमती रतनकंवर चंचलमल चोरडिया चेरेटेबिल ट्रस्ट, जोधपुर; मूल्य ११/-; पृष्ठ ३२

लेखिका द्वारा इस बात का चिंतन करने का निर्देश इस पुस्तिका में दिया गया है कि हम संसार में, परिजनों के बीच में, परिवार में, वैभव में, सत्ता में, पद में एवं पर पदार्थों में अटक कर भटक नहीं जायें, वरन् अपने विवेक चक्षु को खुला रखकर आत्मा की साधना में प्रवृत्त रहें।

डॉ. चंचलमल चोरडिया द्वारा लिखित - **नाड़ीतंत्र एवं मांसपेशियों का उपचार, स्वास्थ्य हेतु सम्यक् चिन्तन आवश्यक, सजगता ही स्वास्थ्य है, प्रभावशाली स्वावलंबी उपचार, भोजन और स्वास्थ्य**

इन पुस्तिकाओं में डॉ. चोरडिया ने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जनोपयोगी जानकारियां दी हैं। यद्यपि लेखक विद्युत अभियंता हैं और सफल व्यवसायी भी हैं, चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली हिंसा को रोकने के लिए स्वावलम्बी एवं प्रभावशाली अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की शोध एवं प्रचार प्रसार में प्रयत्नशील हैं। उनके इस प्रयास में उनकी सहधर्मिणी श्रीमती रतनकुंवर भी सहयोगी हैं। पुस्तिकाओं के माध्यम से वह अपने मिशन के प्रचार में लगे हुये हैं। इन दम्पति की पुस्तिकाएं कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर - ३४२००३ से प्राप्त की जा सकती हैं।

कविवर राजमल जी पवैया अभिनन्दन स्मारिका : प्र. अन्तर्राष्ट्रीय दिगम्बर जैन मुमुक्ष महासंघ, ५०, कहान नगर सोसायटी, बेलत गांव रोड, देवलाली

यह अभिनन्दन स्मारिका हमें अगस्त २००६ में प्राप्त हुई और उससे यह अनुमान किया जाता है कि कदाचित १७ जुलाई २००६ को पवैया जी की ६२वीं जन्म जयंती पर इसका प्रकाशन हुआ। इनका जन्म १७ जुलाई १६१७ को भोपाल में हुआ था और वे भोपाल में रहकर ही आध्यात्मिक साहित्य साधना में निरत हैं। उनक जीवन वृत्त और उनकी कृतियों का समीक्षात्मक परिचय स्मारिका से प्राप्त होता है। उनकी कृतियां तारा देवी पवैया ग्रन्थ माला, ४४, इब्राहिमपुरा, भोपाल-४६२००१ से प्रकाशित हैं। वह स्वतंत्रता सेनानी रहे, दिगम्बर जैन परिषद के अग्रणी कार्यकर्ताओं में रहे और दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज से सम्प्रति सम्बन्धित हैं।

२००६ में प्रकाशित इनकी निम्नलिखित कृतियां उल्लेखनीय हैं :- **श्री जिनेन्द्र व्रत पर्व पूजन विधान, श्री सल्लेखना समाधिमरण विधान, श्री सिद्धक्षेत्र रेशंदीगिरि नयनागिरि विधान, श्री दिव्य ध्वनि विधान, परम शान्ति सुख विधान, द्वादश भक्ति संग्रह विधान,** और **सूक्ति गंगा।**

पं. पवन कुमार जैन "दीवान", मोरैना की कृतियां जो अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद, ६४, भजन नगर, ब्यावर - ३०५६०१ से प्रकाशित हुई हैं :-

पूजन पच्चीसी में २५ रचनायें संकलित हैं जिनकी रचना पं. दीवान द्वारा की गई है।

नित नूतन अर्चन में अन्य रचनाकारों की ४८ रचनायें संकलित हैं और संस्कृत में निबद्ध अभिषेक पूजनादि प्रथम परिच्छेद में दी गई हैं।

श्री रयणसार गीतिका में आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी के प्राकृत भाषा में रचे **रयणसार** का पद्यानुवाद मूलगाथा और उसके अर्थ के साथ पं. दीवान द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

सुन्दरम सौरभम्ः सं. डॉ. एम. गोवन्दराजन; प्र. भाषा संगम तमिलनाडु, १०, बालाजी नगर, विरुगम्बक्कम, चेन्नई-६०००६२; २००६; पृष्ठ २४४ सचित्र

सुन्दरम सौरभम् डॉ. एन. सुन्दरम की ८०वीं वर्षगांठ पर उनकी साहित्य कृतियों का मूल्यांकन व अभिनन्दन के उद्देश्य से प्रकाशित किया गया है। भाग-१ में ६१ साहित्य मनीषियों द्वारा डॉ. सुन्दरम के अभिनन्दन में प्रस्तुत उद्गार सम्मिलित हैं। भाग-२ में डॉ० सुन्दरम के साहित्यिक रचना संसार का परिचय दिया गया है। ये सभी रचनायें हिन्दी में हैं। भाग-३ में तमिल भाषा में उनका परिचय और उनकी

कृतियों का विवरण है। भाग-४ में प्रो. आर. कृष्णन ने अंग्रेजी में डॉ. सुन्दरम के साहित्यिक अवदान का परिचय दिया है।

डॉ. नागेश्वर सुन्दरम का जन्म २८ अप्रैल १९३० को तमिलनाडु के पेरियाकुलम ग्राम में हुआ था। यद्यपि उनकी मातृभाषा कन्नड थी, उनकी शिक्षा का माध्यम तमिल भाषा रहा। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से उन्होंने हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया और जबलपुर यूनीवर्सिटी से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। १९८८ में वह प्रसीडेंसी कालेज चेन्नई से हिन्दी के प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए। भाषा जगत में उनका विशिष्ट योगदान हिन्दी को तमिल भाषी समुदाय सै साहित्यिक आदान-प्रदान द्वारा परिचित कराना रहा। उन्होंने तमिल के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद और हिन्दी के ग्रन्थों का तमिल में अनुवाद करके दोनों भाषाओं के बीच सेतु का काम किया।

तमिल भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रति समादर की भावना जाग्रत करने और हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तमिल साहित्य के प्रति अभिरुचि जाग्रत करने में उनका विशेष योगदान रहा। मेरा परिचय भी डॉ. सुन्दरम से लखनऊ में जब वह अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में भाग लेने के लिए आये थे, हुआ था और तबसे प्रायः सम्पर्क बना रहा। उनका एक लेख **शोधादर्श** के इसी अंक में प्रकाशित है।

दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार करने के उद्देश्य से श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना चेन्नई (तत्कालीन मद्रास) में इस राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर की गई थी कि सम्पूर्ण भारत को एक भाषा सूत्र में बांधा जा सके। डॉ. सुन्दरम से बातचीत के दौरान यह जानकर कि दक्षिण में हिन्दी विरोध का आन्दोलन प्रारम्भ करने में भी १९६० के दशक में श्री राजगोपालाचारी ही अग्रणी रहे, मुझे विस्मय हुआ। श्री राजगोपालाचारी जी के प्रायः ८० वर्ष की आयु में राष्ट्रीय से संकीर्ण राजनीतिक भाव परिवर्तन पर किसी ने भी कुछ लिखने में संकोच किया है। १९४८ से १९५० तक वह भारत के गर्वनर जनरल रहे, तत्पश्चात् पं. जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमण्डल में वह गृहमंत्री रहे, पश्चिम बंगाल के गवर्नर रहे, मद्रास प्रदेश में कुछ समय मुख्यमंत्री रहे और उसके बाद कुछ समय मंत्री भी रहे। १९५४ में **भारत रत्न** से सम्मानित किये जाने वाले वह प्रथम भारतीय नागरिक थे। परन्तु १९५० का दशक समाप्त होते-होते श्री राजगोपालाचारी राजनीतिक दृष्टि से प्रायः शून्य होते गये और उनके द्वारा स्थापित की गई स्वतंत्र पार्टी भी उन्हें पुनः राजनीतिक उत्कर्ष दिलाने में कारगर नहीं हुई। यह भग्नाशा ही हिन्दी-प्रेम से उलट

हिन्दी-विरोध का उनके मानस में प्रस्फुटन का कारण रही प्रतीत होती है। डॉ. सुन्दरम से विचार-विनिमय के दौरान इसका संकेत प्राप्त हुआ।

श्री जितेन्द्र कुमार जैन द्वारा प्रणीत :- आओ चलें ज्ञान की ओर और **आओ जानें जैन धर्म;** प्राप्ति स्थान - वैभव जैन-आशी जैन, "वैशलिक विला", ४६६, महावीर जी नगर, (कमला नगर), बागपत रोड, मेरठ; २००८ व २००६

आओ चलें ज्ञान की ओर में ग्यारह वर्गों में सामग्री संकलित है। श्रावकों के लिए जैन धर्म-दर्शन के विषय में परिचयात्मक जानकारी देने के साथ पूजा, स्तोत्र, चालीसा तथा आध्यात्मिक भजन व कविताएं भी ५६८ पृष्ठों में संकलित हैं।

आओ जानें जैन धर्म में १३०१ प्रश्नों और १६ चित्रों के माध्यम से जैन धर्म के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में जन-साधारण के लिए उपयोगी जानकारी दी गई है। सामान्य रूप से जो जिज्ञासायें पौराणिक एवं सैद्धान्तिक विषयों के सम्बन्ध में जनसाधारण में होती हैं, विशेष रूप से आधुनिक शिक्षित युवा वर्ग में, उनका समाधान इस पुस्तक में किया गया है।

प्राकृत तीर्थ; वर्ष १, अंक २, अक्टूबर-दिसम्बर २००८; सं. प्रो. प्रेम सुमन जैन; प्र. राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, बाहुबलि प्राकृत विद्यापीठ, श्री धवलतीर्थः प्राकृत भवन, श्रवणबेलगोला-५७३१३५

पत्रिका में ६ लेख हिन्दी खण्ड में, २ लेख अंग्रेजी खण्ड में और ३ लेख कन्नड खण्ड में सम्मिलित हैं। सभी लेख शोधपूर्ण हैं और प्राकृत भाषा एवं साहित्य के विषय में जिज्ञासा प्रेरित करते हैं। डॉ. (श्रीमती) विद्यावती जैन का लेख "हाथीगुम्फा-शिलालेख में संदर्भित सांस्कृतिक गोष्ठियां" ने ध्यान आकर्षित किया। शिलालेख की जिस पंक्ति का भाष्य किया गया है उसमें कुछ गोष्ठियों की कल्पना की गई है जो लेख के मूल पाठ से सामन्जस्य नहीं रखती । विदुषी लेखिका को हमने पत्र द्वारा यह स्थिति सूचित भी की थी, परन्तु उन्होंने हमारा समाधान करना आवश्यक नहीं समझा। शिलालेख अथवा किसी ग्रन्थ के मूल पाठ का अनुवाद और भाष्य उसमें प्रयुक्त शब्द विन्यास के आधार पर किया जाना अपेक्षित है। यदि इसमें अपनी ओर से कल्पना का समावेश कर दिया जायेगा तो मूल पाठ का अर्थ दूषित हो जायेगा और उसकी मौलिकता भी संदिग्ध हो जायेगी।

शिलालेख का मूल पाठ **गंधव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित-संदंसनाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडपयति नगरिं** है। इसका सीधा शाब्दिक अर्थ है

गंधर्व विद्या में प्रबुद्ध वह लोक-नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, सुगम संगीत और वाद्य संगीत के कार्यक्रम कराके और विविध उत्सव और मेले कराके नगरवासियों का मनोविनोद करते हैं। 'संदंसनाहि' और 'कारापनाहि' एक समान क्रियापद हैं। जिस प्रकार की गोष्ठियों की कल्पना विदुषी लेखिका द्वारा की गई है, उसके लिए मूल पाठ में कोई संकेत नहीं है।

प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार; वर्ष ७, अंक ६, फरवरी २०१०; सं. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'; प्र. श्री सुधेश जैन, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा, श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स कम्पाउण्ड, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ-४

इस अंक में डॉ. पी. एन. नरसिंह मूर्ति का लेख Re Appraisal of an Epigraph of Emperor Bukka-I विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस लेख में कालिया से प्राप्त १७ जुलाई १३६८ के अभिलेख और श्रवणबेलगोला से प्राप्त २४ अगस्त १३६८ के अभिलेख का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन अभिलेखों से यह विदित होता है कि उस क्षेत्र में श्रीवैष्णवों द्वारा जैनों पर अत्याचार किया जा रहा था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के बाद जैनों ने जो भव्य के नाम से जाने जाते थे, सम्राट बुक्का से सुरक्षा की प्रार्थना की। श्रीवैष्णवों ने जो भक्त के नाम से जाने जाते थे, इस प्रकार का निर्णय पारित कराया कि अत्याचार-कर्ता श्रीवैष्णवों की सुरक्षा के लिए एक बीस-सदस्यीय अंगरक्षक दस्ते का गठन किया जायेगा जिसके लिए सभी जैनों को प्रतिघर प्रतिवर्ष एक हन (स्वर्ण मुद्रा) देनी होगी।

उस क्षेत्र में हरिहर और बुक्का द्वारा विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से पहले मुसलमानों का आधिपत्य था। मुसलमान शासन में हिन्दुओं पर जीवित रहने के प्रतिकर के रूप में जज़िया वसूल किया जाता था। उस क्षेत्र के हिन्दू श्रीवैष्णवों ने भी जैनों से सुरक्षा हेतु स्वर्ण मुद्रा दिये जाने का जो प्राविधान कराया वह जज़िया का ही रूपान्तर था; जिस-जिस क्षेत्र में मुसलमानी शासन व्यवस्था किसी भी समय लागू रही उसका निषेधात्मक या दूषित प्रभाव वहाँ की जनता पर पड़ा और मुसलमानी शासन के आक्रामक नियमों को हिन्दुओं के भी अधिक शक्तिशाली वर्गों ने निर्बल वर्गों को प्रताड़ित करने के लिए अपना लिया। मध्यकालीन इतिहास के शोधन में इस तथ्य को उजागर किया जाना भी अभीष्ट है।

- डॉ. शशि कान्त

समाचार विविधा

प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, (वासोकुण्ड, मुजफ्फरनगर) में २७ नवम्बर २००६ को ११ बजे संस्थान के संस्थापक-निदेशक **डॉ. हीरालाल जैन की स्मृति में व्याख्यानमाला** का आयोजन किया गया। अध्यक्षता विद्यावाचस्पति डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव ने की। मुख्य अतिथि थे पारू विधायक श्री अशोक कुमार सिंह। प्राकृत भाषा और साहित्य के विद्वान् तथा ख्याति प्राप्त वास्तुविद् डॉ. जयकुमार उपाध्ये, उपाचार्य, प्राकृत भाषा विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली मुख्य व्याख्यानकर्ता थे। प्रो. वशिष्ठ नारायण सिन्हा, पूर्व आचार्य, दर्शन शास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी एवं प्रो. देवनारायण शर्मा, पूर्व निदेशक, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, जैसे वरिष्ठ आचार्यों का सान्निध्य प्राप्त था।

प्राकृत में मंगलाचरणपूर्वक संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभचन्द्र जैन द्वारा आगत अतिथियों का परिचय कराते हुए माल्यार्पण द्वारा उनका स्वागत किया गया। इस अवसर पर प्राकृत और जैनशास्त्र विषय में प्रथम श्रेणी स्थान प्राप्त करने वाले संस्थान के छात्र श्री राजेन्द्र पाटिल को 'डॉ. भागचन्द्र पुष्पलता जैन स्वर्णपदक' एवं प्रमाणपत्र से सम्मानित किया गया। संस्थान द्वारा प्रकाशित डॉ. वशिष्ट नारायण सिन्हा द्वारा लिखित पुस्तक 'आस्पेक्ट्स ऑफ नॉन-वायोलेन्स' एवं 'वैशाली इन्स्टीट्यूट रिसर्च बुलेटिन नं. २१" का लोकार्पण माननीय विधायक एवं अन्य अतिथियों द्वारा किया गया।

व्याख्यानमाला का विषय परिचय कराते हुए संस्थान के निदेशक ने कहा कि डॉ. हीरालाल जैन अद्वितीय प्रतिभा के धनी एवं संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राच्य भाषाओं तथा अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं के मनीषी विद्वान एवं संस्थान के संस्थापक-निदेशक थे, जिन्होंने बड़े उत्साह, लगन, सूझ-बूझ और निस्पृह भाव से संस्थान के कार्यों को प्रारम्भ करते हुए आगे बढ़ाया। व्याख्यानमाला को सम्बोधित करते हुए डॉ. उपाध्ये ने कहा कि वास्तुशास्त्र को जानकर तदनुसार आचरण करके प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को उन्नत और सुख-शान्तिमय बना सकता है। प्रसंगतः उन्होंने आध्यात्मिक वास्तु और औद्योगिक वास्तु की भी चर्चा की। प्रो. सिन्हा ने डॉ.

हीरालाल जैन का स्मरण करते हुए अपनी लोकार्पित पुस्तक के सन्दर्भ में अहिंसा के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला। प्रो. शर्मा ने डॉ. हीरालाल जैन से सम्बन्धित अनेक संस्मरण सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। माननीय विधायक जी ने संस्थान की उन्नति के लिए तन-मन-धन से सहयोग करने का संकल्प व्यक्त किया। अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ. सूरिदेव ने कहा कि इस व्याख्यानमाला का आयोजन करके संस्थान के निदेशक एवं पदाधिकारियों ने न केवल डॉ. जैन का स्मरण किया है बल्कि प्राकृत भाषा सहित सभी प्राच्य-भाषाओं का सम्मान किया है।

पुनः १६ दिसम्बर २००६ को संस्थान के पूर्व निदेशक **डॉ. गुलाबचंद चौधरी की स्मृति में** एक **व्याख्यानमाला** का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरनगर, ने की। इसमें मुख्य व्याख्यानकर्ता थे प्राकृत भाषा और साहित्य के राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त विद्वान प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत-प्राकृत विभाग, एच.डी. जैन कालेज आरा (मगध विश्वविद्यालय)। प्रो. देवनारायण शर्मा, पूर्व निदेशक, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली तथा डॉ. विद्यावती जैन, पूर्व आचार्या, हिन्दी विभाग, महिला महाविद्यालय, आरा का सान्निध्य प्राप्त था। जैनविद्या प्रेमी एवं समाजसेवी श्री ईशान कुमार जैन सपत्नीक इस आयोजन में प्रमुख अतिथि थे।

प्राकृत में मंगल के रूप में भगवान महावीर का स्मरण करते हुए संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभचन्द्र जैन ने मंचासीन अतिथियों का परिचय कराया तथा श्री प्रमोदकुमार चौधरी ने सभी अतिथियों का माल्यार्पण करके स्वागत किया। प्रमुख अतिथि श्री ईशान कुमार जैन ने संस्थान के प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले छात्र को स्वर्ण पदक के साथ ११०००/- रुपये की नगद राशि अपनी ओर से देने की घोषणा की।

व्याख्यानमाला एवं व्याख्यान का विषय परिचित कराते हुए निदेशक डॉ. जैन ने कहा कि डॉ. चौधरी ने प्राकृत भाषा और साहित्य एवं जैन इतिहास के अध्ययन-अध्यापन और शोध में संलग्न रहते हुए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। मुख्य वक्ता प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन ने कहा कि जैन इतिहास में प्राचीन आचार्यों का बहुत बड़ा उपकार है। उन्होंने महावीर की वाणी को जनसामान्य के लिए ग्राह्य बनाया। डॉ. जैन ने गणधरों, आचार्यों - गुणधर, पुष्पदंत, भूतबलि, यतिवृषभ, कुन्दकुन्द,

समन्तभद्र, हरिभद्र, सिद्धसेन, जिनसेन, स्वयंभू, रइधू आदि के योगदान की विस्तार से चर्चा की। साथ ही, खारवेल, सम्प्रति, कुमारपाल और सातवाहन आदि राजाओं के कृतित्व पर भी प्रकाश डाला। डॉ. विद्यावती जैन ने प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध वैदेशिक व्यापार और समुद्र यात्राओं की चर्चा करते हुए अपने देश के स्वर्णिम इतिहास की ओर संकेत किया। प्रो. देवनारायण शर्मा ने स्वर्गीय डॉ. चौधरी के संदर्भ में अनेक संस्करण सुनाए। अध्यक्षीय भषण में डॉ. सिंह ने कहा कि इस व्याख्यानमाला के आयोजकों ने प्राचीन विद्वान का स्मरण कर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का जो संकल्प व्यक्त किया है, वह अनुकरणीय है। प्राकृत भाषा ऐसी विशाल नदी है, जिससे नहर स्वरूप अनेक भाषाएं निकलती हैं, इसलिए प्राकृत भाषा के ज्ञान के बिना किसी भी भाषा के हार्द को समझना कठिन है।

'पंकज' जन्म-शताब्दी वर्ष

विश्व प्रसिद्ध गीत 'तुम से लागी लगन, ले लो अपनी शरण, पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा' के रचयिता अजमेर निवासी कविवर स्व. श्री माणकचंद जी पाटनी 'पंकज' के जन्म-शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में गुजरात प्रान्त के साबरमती नगर में दिनांक १० जनवरी, २०१०, को 'एक शाम पंकज के नाम' से भावभीनी भजन संध्या का आयोजन किया गया। श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर धर्मनगर साबरमती में सम्पन्न भजन संध्या प्रो. सुशील पाटनी के नेतृत्व में श्री दिगम्बर जैन संगीत मंडल अजमेर के कलाकारों द्वारा आयोजित की गई, जिसमें सुभाष पाटनी, धनकुमार लुहाड़िया, धर्मचंद पाटनी, विद्याकुमार बड़जात्या आदि गायकों ने 'पंकज' द्वारा रचित गीतों की प्रस्तुति की।

श्री 'पंकज' का जन्म सन् १९१० में अजमेर के पाटनी परिवार के श्रेष्ठी श्री भंवरलाल जी पाटनी की पत्नी श्रीमती बसंत बाई की कोख से हुआ था। इनका परिचय श्री रमा कान्त जैन द्वारा **शोधादर्श**-६३ में पृ. ७०-७१ पर दिया गया है।

दिगम्बर जैन महासमिति का राष्ट्रीय अधिवेशन

चैतन्यधाम (धणप) गांधीनगर में दि. ९-१० जनवरी २०१० को आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन सात सत्रों में विभक्त था। उल्लेखनीय है कि पूरे अधिवेशन में प्रतिनिधियों से व्यवस्था एवं शांति बनाने हेतु कभी निवेदन नहीं करना पड़ा।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता डॉ. हुकमचंद भारिल्ल ने की। इस सत्र का मुख्य आकर्षण **एक साईट सम्पूर्ण समाधान** के उद्देश्य को लेकर तैयार की गई

वेबसाइट www.jain.djmahasamiti.org का लोकार्पण था। वेबसाइट के माध्यम से बताया गया कि इसका मुख्य उद्देश्य जैन तीर्थों के आसपास उपलब्ध जैन रेस्टोरेंट, भोजनालय, आवास व्यवस्था, जैन शैक्षणिक संस्थाओं, अन्य जैन साइटों की लिंक, टूर आपरेटर, ब्लॉगिंग एवं अन्य समसामयिक जानकारी उपलब्ध करना है। इसके पश्चात् भारतीय डाक विभाग द्वारा जारी 'प्रथम दिवस आवरण कवर' का अनावरण किया गया।

द्वितीय सत्र श्री एन. के. सेठी, जयपुर की अध्यक्षता में शिक्षा सहयोग को समर्पित था। यह सत्र महासमिति की महत्वाकांक्षी योजना 'दिगम्बर समाज का कोई भी व्यक्ति बारहवीं से कम शिक्षित न हो' को समर्पित था। मुख्य संयोजक डा. एम. के. जैन अहमदाबाद ने 'शिक्षा सहयोग' की संकल्पना प्रस्तुत की।

तृतीय सत्र की अध्यक्षता श्री दर्शनलाल जैन जगाधरी ने की। इस सत्र के मुख्य अतिथि थे माननीय श्री नरेन्द्र भाई मोदी, मुख्यमंत्री, गुजरात। विनय जैन देवबन्दी आर्ट्स ग्रुप गाजियाबाद द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति की गई। अधिवेशन की स्मारिका 'संकल्प' का विमोचन माननीय मुख्यमंत्री के कर कमलों से कराया गया। महासमिति की ओर से गुजरात सरकार को कन्या विकास योजना में एक लाख रुपये की सहयोग राशि का चैक माननीय मुख्यमंत्री जी को भेंट किया गया। समाज को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मुख्यमंत्री ने २४ तीर्थंकरों में से २३ तीर्थंकरों से सम्बंधित वृक्षों को तारंगा जी तपोवन में लगवाया है तथा २४वें वृक्ष की तलाश वह विदेशों में भी कर रहे हैं।

चतुर्थ सत्र श्री हंसमुख गांधी, इन्दौर, के संयोजकत्व में आंचलिक सत्र आख्या के रूप में हुआ। पंचम सत्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विनय देवबन्दी आर्ट ग्रुप गाजियाबाद द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम को समर्पित था।

दिनांक १० जनवरी को प्रातः चैतन्यधाम में सामूहिक पूजा और इसके पश्चात् डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल का आध्यात्मिक प्रवचन उल्लेखनीय रहे।

छठवां सत्र श्री स्वरूपचंद जैन मारसन्स, आगरा, की अध्यक्षता में 'राष्ट्र निर्माण में जैनों का योगदान' के लिए समर्पित था। मुख्य अतिथि थे केन्द्रीय ग्रामीण विकास राज्य मंत्री श्री प्रदीप जैन 'आदित्य' तथा विशिष्ट अतिथि थे श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्री आर.के. जैन मुम्बई और पूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री धनन्जय जैन बंगलुरु। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती डॉ. नीलम जैन, गुड़गांव, ने

किया। इस अवसर पर महासमिति द्वारा इस विषय पर आयोजित राष्ट्रव्यापी प्रतियोगिता के प्रथम तीन विजेताओं डॉ. पंकज जैन वाराणसी, डॉ. राजेश वत्सल जबलपुर व डॉ. एस. एन. जैन जयपुर, को क्रमशः ३१ हजार रुपये का 'प्रकाशचंद्र जैन लुहाड़िया सासनी स्मृति' प्रथम पुरस्कार, २१ हजार रुपये का 'देवकुमार सिंह जैन कासलीवाल इन्दौर स्मृति' द्वितीय पुरस्कार तथा ११ हजार रुपये का 'महावीर प्रसाद जैन एडवोकेट हिसार स्मृति' तृतीय पुरस्कार दिया गया। सप्तम सत्र समीक्षा एवं सम्मान समारोह के रूप में था।

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद

दिनांक, २१.२.२०१० को भारतीय शिल्प व स्थापत्य के प्रतिष्ठित विद्वान प्रो. मधुसूदन ढाकी का अभिनन्दन श्री श्रेणिक भाई की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

दिनांक २ से ४ मार्च को वर्ल्ड ज़र्थुष्टी कल्चरल फाउन्डेशन के अध्यक्ष डॉ. होमी बी ढल्ला द्वारा ज़ोरोस्ट्रियन धर्म पर ३ व्याख्यानों का आयोजन किया गया। विभिन्न धर्मों के विषय में सम्यक् जानकारी के प्रसार के उद्देश्य से यह व्याख्यानमाला प्रेरित है।

डॉ० पं. पन्नालाल जी जैन साहित्याचार्य की पुण्यतिथि

मंगलवार, ९ मार्च, २०१०, को भाग्योदय तीर्थ चिकित्सालय द्वारा प्रतिमा-स्थल कीर्ति-स्तंभ, साहित्याचार्य मार्ग, नमकमंडी, कटरा, सागर में ब्लड ग्रुप, ब्लड प्रेशर एवं ब्लड शुगर परीक्षण (निःशुल्क) तथा ब्लड डोनेशन शिविर डॉ. राजेश जैन, बाल्य एवं शिशु रोग विशेषज्ञ, द्वारा आयोजित किया गया।

सन्मति ट्रस्ट, मुम्बई

श्रीमान् पं. जयचन्द जी छाबड़ा कृत 'भक्तामर स्तोत्र का हिन्दी काव्यानुवाद', जहाँ कहीं उपलब्ध हो तो 'सन्मति ट्रस्ट, ए-१८ संजय मेंशन, २ माला, ४४८७, कालबा देवी रोड, मुम्बई ४००००२, फोन ०९८६९३५४२२१,' को फोटो प्रति भेजकर अनुग्रहीत करें। उसे सुसंपादित कर उन्हीं द्वारा लिखित भाषा वचनिका के साथ प्रकाशित करने का सन्मति ट्रस्ट का ध्येय है।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी

सत्र २०१०-११ १५ जुलाई से प्रारंभ होगा। इच्छुक एवं योग्य छात्र पूर्ण विवरण के साथ आवेदन पत्र सत्रारम्भ से पहले भेजें।

अभिनन्दन

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, ने श्रीमती बबीता जैन को उनके शोध-प्रबंध **'सराक आचार : श्रावकाचार - इतिहास और पुरातत्व के परिप्रेक्ष्य में'** के लिए पी-एच.डी. उपाधि से सम्मानित किया। उन्होंने अपना शोधकार्य डॉ० पी० सी० जैन, निदेशक, जैन अनुशीलन केन्द्र, के निर्देशन में पूरा किया।

पं. राजेन्द्र पाटील शास्त्री को डॉ. बी. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय से प्राकृत एवं जैनशास्त्र विषय की एम.ए.परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए 'प्रो० डॉ. भागचन्द्र पुष्पलता जैन स्वर्ण पदक' से सम्मानित किया गया।

डॉ० श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत, को श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बड़ागांव (बागपत) द्वारा 'आचार्य अकलंकदेव पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

डॉ० रत्ना जैन, एम.बी.बी.एस., एम.डी., (जन्म ४-३-१९६२), कोटा नगर की महापौर निर्वाचित हुई। श्रीमती रेखा नवीन विनायका भी नगरपालिका नीमच में पार्षद निर्वाचित हुई। स्वतंत्रता के विगत ६२ वर्षों में इन पदों पर निर्वाचित होने वाली ये प्रथम जैन महिलायें हैं।

नगर के वरिष्ठतम नागरिक होने के उपलक्ष में श्री सुरेश चन्द्र जैन का गणतंत्र दिवस (२६.१.२०१०) पर नगरपालिका मसूरी द्वारा नागरिक सम्मान किया गया। वह हमारी समिति की प्रवृतियों से भी जुड़े हैं और **शोधादर्श** के सुधी पाठक हैं।

श्री प्रदीप कुमार जैन, संपादक, **दैनिक विश्व परिवार**, झांसी को उत्तर प्रदेश सरकार की राज्य प्रेस समिति में सदस्य चयनित किया गया।

श्री निर्मलकुमार सेठी, जो हमारी समिति के भी सदस्य हैं, को ७ मार्च को पुनः श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का सर्व सम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। वह २८ वर्षों से इस पद को सुशोभित कर रहे हैं।

तीर्थंकर वाणी के प्रधान सम्पादक डॉ. शेखरचंद्र जैन को २५ मार्च को श्रवणबेगोला में 'गोमटेश विद्यापीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

२६ मार्च को अपने ७८ वें जन्म दिवस पर उदयपुर के श्री ओंकार श्री ने देहदान का कल्याणधर्मी संकल्प पत्र स्थानीय आर. एन. टी. मेडिकल कालेज के अधिष्ठाता को समर्पित किया।

उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यशवृद्धि के लिए **शोधादर्श** परिवार की ओर से हार्दिक अभिनन्दन है।

शोक संवेदन - श्रद्धांजलि

१६ अक्टूबर २००६ को कानपुर में श्री एम.डी. जैन का शतायु प्राप्त कर (जन्म २-८-१६०६, मेरठ) निधन हो गया। वह कानपुर नगर निगम में १२ वर्ष नगर अभियंता रहे थे। उनके धार्मिक आचरण और ज्ञान के लिए कानपुर नगर जैन समिति ने उन्हें १६६६ में 'जैन रत्न' सम्मान से अलंकृत किया था। परिवार में सभी उच्च शिक्षा प्राप्त हैं।

तिब्बती, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश एवं अंग्रेजी सहित अठारह भाषाओं के मूर्धन्य विद्वान् मुनिराज श्री जम्बूविजयजी का कालधर्म १२ नवम्बर को नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ में अपना चातुर्मास परिपूर्ण कर जैसलमेर की ओर विहार करते समय बालोतरा एवं बाड़मेर के बीच एक सड़क दुर्घटना में हो गया। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया था। विशेष उपलब्धियां - तीस वर्षों के अथक परिश्रम से सम्पादित **चिरंतनाचार्य विरचित द्वादशारनयचक्र** (तीन भागों में) के परिशिष्ट में अनेक जैन स्रोतों से सम्पादित **दिङ्नाग विरचित प्रमाणसमुच्चय** का तिब्बती से संस्कृत में लिप्यांतरण सम्मिलित है।

१५ नवम्बर को अखिल भारतीय शास्त्री परिषद के १० वर्ष तक रहे पूर्व अध्यक्ष, वाणीभूषण पं. सागरमल जैन का सीहोर में स्वर्गवास हो गया।

२४ नवम्बर को श्री महावीरजी में स्त्री शक्ति की साधिका ब्र. कमलाबाई जी नहीं रहीं। अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में रहते हुए शिक्षालय के रूप में एक छोटा सा बीज बोकर उन्होंने उसे महाविद्यालय के रूप में एक वट वृक्ष का रूप प्रदान किया।

नवम्बर में ही पार्श्वनाथ विद्याश्रम के पूर्व निदेशक रहे और पुणे विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग के आचार्य पद से सेवानिवृत्त डॉ. मोहनलाल मेहता जी दिवंगत हो गये।

३ दिसम्बर को सागर में सिंघई जीवन कुमार का देहावसान हो गया। उनका जन्म २६.१०.१६२७ को हुआ था। आर्ष मार्ग के श्रेष्ठ उपासक 'श्रावक शिरोमणि' के रूप में बुन्देलखंड में उनकी ख्याति थी।

१३ दिसम्बर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग के पूर्व अध्यक्ष, डॉ. कोमलचंद जैन का ७४ वर्ष की अवस्था में महाप्रयाण हो गया। आपके शोध कार्य का विषय **जैन एवं बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन** रहा।

आप स्पष्टवादी थे और समाज में व्याप्त स्वार्थी प्रतिस्पर्धा में कभी सम्मिलित नहीं हुए। उनके पूर्व छात्र आज भी उनका बहुमान करते हैं।

२३ दिसम्बर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जैन दर्शन एवं बौद्ध दर्शन विभाग के पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष पं. उदयचन्द्र जैन का निधन हो गया। वह ८६ वर्ष के थे। काशी की प्राचीन परम्परा के विद्वान के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी। **शोधादर्श** के सुधी पाठक थे।

जैन धर्म-दर्शन-संस्कृति व साहित्य के मूर्धन्य विश्रुत विद्वान-मनीषी चिन्तक विद्यावारिधि डॉ० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया डी० लिट्० का दिनांक १० जनवरी २०१० को पंडित मरण हो गया। डॉ० प्रचण्डिया का १६ अक्टूबर, १६२६ को दलीपपुर कैली, जिला मैनपुरी, में जन्म हुआ था। आपने श्री वार्ष्णेय कॉलेज, अलीगढ़, के हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रोफेसर रहते हुए शोध के नए आयाम स्थापित किए। अपने चारों पुत्र-पुत्रवधुओं तथा पौत्र-पौत्रियों को धार्मिक संस्कार देते हुए सुयोग्य बनाया। **शोधादर्श** के वे सुधी पाठक थे और उनकी आध्यात्मिक रचनायें भी **शोधादर्श** में प्रकाशित होती रही हैं।

१७ जनवरी को भोपाल में डॉ. सूरजमुखी जैन पी-एच.डी. का निधन हो गया। उनका जन्म १.७.१६२६ को आरा में हुआ था। विवाह मुजफ्फरनगर के स्वतन्त्रता सेनानी श्री शीतलप्रसाद जैन के साथ हुआ। १६४६ से १६७४ तक मुजफ्फरनगर में ही उन्होंने अध्यापन कार्य किया और तत्पश्चात् १६८६ तक जैन स्थानकवासी कन्या महाविद्यालय, बड़ौत में प्राचार्य रहीं। **'अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और कबीर'** उनका शोध प्रबंध है जो १६६६ में प्रकाशित हुआ। उसका समीक्षात्मक परिचय **शोधादर्श**-२६ में दृष्टव्य है।

२० जनवरी को लखनऊ में श्री कन्हैयालाल जैन दिवंगत हो गये। उनका जन्म २०.१.१६२८ को हुआ था। वह कागज के सफल व्यवसायी थे। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति से प्रारंभ से ही जुड़े थे और १६६७ से उसके उपाध्यक्ष पद के दायित्व का निर्वहन कर रहे थे।

२६ जनवरी को सीतापुर में डॉ० गणेशदत्त सारस्वत का देहावसान हो गया। उनका जन्म १० सितम्बर १६३६ को बिसवां में हुआ था। वह आर. एम.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय सीतापुर (उ.प्र.) में हिन्दी के निवर्तमान अध्यक्ष थे। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त **'मानस चन्दन'** के प्रधान सम्पादक डॉ. गणेशदत्त सारस्वत

का रचना संसार काफी विशाल है। वे अपने समय के ओज, भक्ति और भावपूर्ण समर्थ साहित्यकार थे। **शोधादर्श** के वह सुधी पाठक थे और उनकी रचनायें भी **शोधादर्श** में प्रकाशित होती रही हैं। इस अंक में भी एक रचना है।

उपर्युक्त सभी मनीषियों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की चिरशांति और सद्गति के लिए प्रार्थना करता है और शोक संतप्त परिवारजनों एवं मित्रवर्ग के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन के सुपौत्र और स्व. मणिकान्त जैन के सुपुत्र चि. मयंक जैन के २६-११-२००६ को सौ. चांदनी के साथ सम्पन्न विवाह के उपलक्ष में श्रीमती माया जैन, पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ ने अपने पुत्र व पुत्रवधु के मंगल हेतु **शोधादर्श** को रु. २५०/- भेंट किये।

डॉ० विनय कुमार जैन, ३६, पटेल नगर, लखनऊ ने अपनी सुपौत्री बेबी श्रेयसी (सुपुत्री चि. कुणाल जैन) के २८.११.२००६ को जन्म के उपलक्ष में रु. २५०/-भेंट किये।

श्री शीतल प्रसाद जैन, डी-२/१८, चार इमली, भोपाल, ने १७.१.१० को दिवंगत अपनी सहधर्मिणी डॉ. सूरजमुखी की पुनीत स्मृति में रु. १५०/- भेंट किये।

चाचाजी स्मृतिशेष श्री अजित प्रसाद जैन की १.१.२०१० को ६२वी जन्म जयन्ती पर और पिताजी इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ६.२.१० को ६८वीं जन्म जयन्ती पर डॉ. शशि कान्त ने पुण्य स्मरण हेतु रु. १५०/- भेंट किये।

श्री सन्दीप कान्त जैन और श्री अंशु जैन 'अमर' ने अपने पिताजी स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन की १०.२.१० को ७४वीं जन्म जयन्ती पर रु. १००/- भेंट किये।

श्री कैलाश नारायण टण्डन, पाण्डुनगर, कानपुर ने अपनी पत्नी श्रीमती शकुन्तला टण्डन की १७वीं पुण्यतिथि पर रु. ५०/- भेंट किये।

पाठकों के पत्र

श्री रमा कान्त जैन के प्रति भावांजलि

श्री रमा कान्त जी जैन, मधुसम बोले बैन,
सम्पादक सरताज, हमें याद आते हैं।
शोधादर्श-पत्रिका में, लेख लिखे शोधपूर्ण,
छोड़ चले संसार को, मोक्ष धाम जाते हैं।
कवि-लेखक-दुलारे-जन-जन के थे प्यारे,
कविता रचें रसीली, हम सब गाते हैं।
करते सभी क्रन्दन, परिजनों को नमन,
'पारदर्शी-पुष्पांजलि' चरण चढ़ाते हैं।

- छन्दराज श्री ऊं पारदर्शी, उदयपुर

२६.०५.०९ को रमा कान्त का आकस्मिक निधन हो गया यह जानकर घर के सभी सदस्य बड़े व्यथित हुए। रमा कान्त बड़े विनयशील सहृदय व कुशल चिन्तक व लेखक थे। उनकी रचनाएं व लेख **शोधादर्श** में पढ़ने को मिलते थे। रमा कान्त जब कभी साधु सन्तों के शिथिलाचार पर, समाज की कुरीतियों पर अथवा धर्म के आडम्बरों पर कटाक्ष करते थे, बड़ी कुशलता से सुन्दर भाषा में करते थे जो सीधा हृदय की गहराइयों में उतरता था। वह निर्भीक लेखक थे। उनके इस निधन से परिवार के सदस्यों को तो असहनीय पीड़ा हुई ही है परन्तु समाज ने भी एक ऐसा रत्न खो दिया जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं।

- श्री जयप्रकाश जैन, एडवोकेट, मेरठ

श्री रमा कान्त जी अत्यन्त प्रतिभाशाली रचनाकार एवं संपादक थे। जैन जगत में उनकी क्षतिपूर्ति अपूरणीय है। आप उनके निर्देशित पथ पर आगे बढ़ेंगे और **'शोधादर्श'** की महान परम्परा बनाए रखेंगे, इस आशा और विश्वास के साथ।

- श्री दर्शन लाड, मुंबई-४००९८

अंक क्रमांक ६८ को पढ़कर हृदय में अत्यंत वैराग्यरूपी परिणाम हुए हैं कि श्री रमा कान्त जी के शरीर का क्षेत्रान्तर हो गया है। वर्तमान में प्रायः हम सभी जनों का क्षेत्रान्तर होना निश्चित ही है परन्तु अन्तर में विराजा हुआ भगवान आत्मा ज्यों का त्यों ही रहता है। अनादि अनन्त काल से अजर अमर पदार्थ सदा शुद्ध ही विराज

रहा है एवं शरीर रूपी पर्याय का मिलना भी नियत है। अज्ञानी संसारी जन मरण को शोक के रूप में देखते चले आ रहे हैं। शोक तो २५ कषायों में एक कषाय है। ज्ञानी जनों को शोक नहीं होता है, वे कषायों से विरक्त रहने के पुरुषार्थ में संलग्न रहते हैं। जैन शासन में मरण नाम का शब्द ही नहीं है। वे तो मरण को त्यौहार के रूप में मनाते हैं। एक ज्ञानी कवि ने लिखा है -

मरण का त्यौहार आया, मरण का त्यौहार आया
जिन्दगी की साधना का यह परीक्षाकाल आया (मरण का)
चलो आत्मन् जीर्ण तन तज प्राप्त नवल शरीर धरने
क्योंकि छोटे फटे मैले वस्त्र होते हैं बदलने
नयेपन का द्वार पाया मरण का त्यौहार आया

इसी प्रकार प्रथमानुयोग में दृष्टान्त आया है कि महापुरुष श्री युधिष्ठिर महाराज जो क्षायिक सम्यक्ती थे अपने महल में नित्य सत्संग स्वाध्याय करते थे। एक शिष्य ने प्रश्न किया - महाराज आश्चर्य नाम की जगत् में क्या चीज है? उत्तर में उन्होंने कहा - भगवान सर्वज्ञ के ज्ञान में तीन काल तीन लोक में अनन्त पदार्थ सब निश्चित हैं, अतः आश्चर्य नाम की कोई वस्तु नहीं है। पुनः प्रश्नकार बोला - जब वस्तु ही नहीं है तब शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ? वे अति गम्भीर हो गये और प्रश्न का उत्तर कुछ समय बाद देने को कहा। पश्चात् गम्भीर विचारों में खो गये। जब केवली के ज्ञान में सब निश्चित ही है, फिर आश्चर्य क्या? परन्तु शब्द है तो वस्तु भी होनी चाहिए, वे खोजने लगे। जब सच्चे हृदय से खोज प्रारम्भ हो तो समाधान भी अनिवार्य है। कहावत भी है 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ'। पुनः सभा में प्रश्न कर्ता को उत्तर दिया कि दूसरों के मरण अर्थात् क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होते हुए अपना भी यही होना है, इसका विचार नहीं करना यह घोर आश्चर्य है।

लोक दृष्टि से अवकोलन करें तो स्पष्टता नजरों में आ सकती है। क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होना अनिवार्य ही है। मात्र ट्रान्स्फर है। समाधिमरण पाठ में लिखा है कि -

"तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी"

इस दृष्टि से देखा जाये तो श्री रमा कान्त जी अपने पूर्व शुभ भावों से पुण्य बन्ध कर स्वर्ग लोक में ही गए हैं जहाँ इस लोक की अपेक्षा से अधिक सुखी होंगे।

हमें आदरणीय स्व. श्री रमा कान्त के क्षेत्रान्तर होने पर शोक नहीं मनाना चाहिए। उनके रहे हुये बाकी काम को पूरा करने की तैयारी करनी है। सर्वोत्तम सदाचार की प्रेरणा मूर्ति के प्रति अर्पण भाव यही होगा कि आत्म अनुभूति के कार्य

को पूरा करके वैमानिक देवों के लोक में पहुँचे। आज हम जिन्हें नजरों में ढूंढ रहे हैं, वे स्वर्गों में स्वमेव ही दिखेंगे।

- श्री पदमचन्द जैन सर्राफ, आगरा

परिजनों तथा सम्बन्धियों के भाव पूर्ण लेख मन की गहरायी तक उतर गये। भाग्य की विडम्बना कि 'गुरुगुण-कीर्तन' करने वाले रमा कान्त जी स्वयं गुरुगुण-कीर्तन बन गये। रमा कान्त जी अब परिजनों के ही नहीं सबके हो गये हैं। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने **'शोधादर्श'** रूपी जिस ध्वज की स्थापना की थी उसे ऊँचा उठाये रखने की क्षमता उनके परिवार में है। यह परमात्मा की बहुत बड़ी कृपा है। मुझे आशा है कि पत्रिका के वर्तमान सम्पादक चि. नलिन कान्त जैन अपने योग्य पिता के निर्देशन में अपने बाबा और चाचा के दिखााये मार्ग पर इसे निरन्तर आगे बढ़ाते रहेंगे। मैंने इस अंक को बार-बार पढ़ा है और अभी भी पढ़ रहा हूँ। रमा कान्त की याद भुलाये नहीं भूलती। वे अच्छे इन्सान थे। उनकी आत्मा को मेरा श्रद्धापूर्वक नमन।

- साहित्य-भूषण डॉ परमानन्द जड़िया, लखनऊ

रमा कान्त जी एक साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे। वे अपने सरल सहज और विनोदी स्वभाव से किसी को भी आकर्षित करने में समर्थ थे। **शोधादर्श** से पता चलता है कि वे कितने लोकप्रिय थे। उनका जन सम्पर्क और साहित्यिक क्षेत्र भी विशाल था।

पारिवारिक दृष्टि से श्री रमा कान्त एक आदर्श पुरुष थे। आप दोनों भाइयों का मधुर स्नेह सम्बन्ध तथा अपने चाचा श्री अजित प्रसाद जी के प्रति पूज्यता का भाव मैंने स्वयं देखे हैं। सम्भवतः परिवार के सभी छोटे बड़े सदस्यों ने रमा कान्त जी को **शोधादर्श** के माध्यम से अपनी भावांजलि अर्पित की है। अतः कहा जा सकता है कि वे एक आदर्श पुत्र, भाई, पिता इत्यादि सभी कुछ थे।

कभी कबीर दास का एक दोहा पढ़ा था -

जब तू आया जगत में जग हंसा तू रोय।
ऐसी करनी कर चलो तू हंसे जग रोय।।

- रमा कान्त इस उक्ति को चरितार्थ कर गये।

- श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास', लखनऊ

भारत के बीसवीं सदी के जैन इतिहासकार डॉ० ज्योति प्रसाद जैन की विरासत के एक स्तम्भ स्व. भाई रमा कान्त जी जैन की स्मृति में अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ। इस विरासत को आप व अपका परिवार चलाता रहे, ऐसी कामना है।

- श्री प्रेमकुमार जैन, विदिशा (म.प्र.)

स्मृति अंक को मैंने आद्योपान्त पढ़ा है। लगभग ५ वर्ष पूर्व से मैं प्रिय रमा कान्त को अपने हृदय में छोटे भाई की तरह प्यार करता रहा। उनकी सरलता के कारण मैं यह न जान पाया कि वे इतने बड़े विद्वान थे। इस अंक से मुझे निम्न बातें ज्ञात हुईं जो मेरी जानकारी में नहीं थी - १. वे आशु कवि भी थे। २. तामिल भाषा पर भी उनका अधिकार था। ३. उन्हें कैंसर जैसा आसाध्य रोग हो गया। ४. पुत्रवधू के स्वर्गीय पिता का कर्तव्य निबाहा। प्रिय रमा कान्त की मृत्यु का समाचार पाकर मुझे तगड़ा झटका लगना तो स्वाभाविक था। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे। ऐसे योग्य भाई के विछोह के फलस्वरूप आपका जीवन व कार्य प्रभावित होना स्वाभाविक है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके मार्गदर्शन में प्रिय नलिन कान्त, अंशु जैन 'अमर' तथा अन्य लेखकों की प्रतिभा अवश्य प्रस्फुटित होगी।

- श्री बिशम्भर दयाल अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श से लखनऊ के दो विद्वान तथा स्नेही व्यक्तित्वों के निधन का समाचार पाकर गहरा आघात लगा। श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' जी तथा श्री रमा कान्त जैन दोनों पुराने परिचित थे। एक लम्बी अवधि व्यतीत हो गई। आप तो भाई रमा कान्त जी की स्थिति जानते ही हैं। ईश्वर इन लोगों की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

- श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

अपने मित्र श्री रमा कान्त जी से फोन पर मेरी वार्ता कदाचित् विगत होली के बाद ही किसी दिन हुई थी। मुझे साहित्य समाज में उनकी इतनी उपलब्धियों के विषय में ज्यादा मालूम न था। किन्तु इस अंक में प्रकाशित लेखों से उनकी विशिष्टताओं का ज्ञान हुआ।

- श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ

भाई सा. रमा कान्त जी सचमुच हीरा थे जिनकी चमक पूरे अंक में दिखी। उनकी सहज सरल छवि अब सबको चमत्कृत करती रहेगी, विश्वास है। अंक वैसे छोटा किन्तु प्रभावी व समर्थ है विषयवस्तु की दृष्टि से।

- श्री मोती लाल 'विजय', श्रीमती विमला सिघंई, कटनी, म. प्र.

अंक रमा कान्त जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाश डालने में सफल हुआ है। उनके विषय में उनके परिजनों, मित्रों, प्रशंसकों की

श्रद्धांजलियां एवं भावांजलियां इस अंक में प्रस्तुत कर उनकी मधुरस्मृतियों को आपने सचमुच जीवंतता प्रदान कर दी है। इस सत्प्रयास के लिए श्री नलिन कान्त जैन एवं सहसम्पादक श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री अंशु जैन 'अमर' तथा डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल निश्चय ही सराहना के पात्र हैं। मैं उन्हें इस पुनीत कार्य के लिए साधुवाद देता हूँ।

श्री अंशु जैन 'अमर' की प्रस्तुति 'गुरुगुण कीर्तन : रमा कान्त', शशि कान्त की भावांजलि 'आत्मीय की व्यथा कथा', श्रीमती इन्दु कान्त जैन का लेख 'यादों के झरोखे से', श्री लूणकरण नाहर जैन की रचना 'स्मृतिशेष श्री रमा कान्त जैन को श्रद्धासुमन', पं. काशीनाथ गोपाल गोरे के संस्मरण, श्री नरेश चन्द्र जैन का लेख 'मित्र का वियोग', रवीन्द्र कुमार 'राजेश' की श्रद्धांजलि 'भाई रमा कान्त जैन : एक अनुकरणीय व्यक्तित्व', श्रीमती सीमा जैन की प्रस्तुति 'हमारे पापा जी', श्रीमती आशा जैन का लेख 'मेरी आँखों की रोशनी : देवता तुल्य पति', एवं 'अतीत की स्मृतियां चित्रावली', सहित अन्य लेखों ने **शोधादर्श**-६८ को और भी अधिक गरिमामय बना दिया है।

- श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश', अलीगंज, लखनऊ

शोध पत्रिका '**शोधादर्श**'-६८ **श्री रमा कान्त जैन स्मृति अंक** को एक नजर में ही पढ़ डाला जिससे श्री रमा कान्त जैन जी के बहुआयामी व्यक्तित्व का पता ही नहीं चला वरन् यह भी स्पष्ट हुआ तथा उत्साहवर्द्धक लगा कि आप जैसे लोग सच को संवारने एवं बनाये रखने की क्रान्ति के लिए कमर कसे हुए हैं जो आपके परिवार एवं संस्थान की सबसे बड़ी विशेषता दर्शाती है। दीपक की तरह आप चारों ओर के शैतानी वातावरण के बीच भी प्रकाशपुंज (सत्य) को बिखेरते रहें, ऐसी शुभकामनाएं मैं प्रेषित करता हूँ।

- श्री राजकुमार यादव, लौंगोवाल

आपकी 'आत्मीय की व्यथा-कथा' हृदय को छू गयी। वणिक परिवार में आप जैसे गुणग्राही अग्रज अपवाद स्वरूप ही होते हैं। श्री रमा कान्त जी के आखरी सप्ताह की त्रासदी पूर्ण दारुण-उपसर्ग की व्यथा झकझोरने वाली है। इसे आपने कदाचित प्रकृति के किसी अदृश्य विधान के रूप में देखा। इस सम्बन्ध में मैं अपनी अल्प बुद्धि से इतना ही कहूँगा कि जब देवायुष्य का बंध हो जाता है तब देवायुष्य के काल में उदय में अपने योग्य असाता वेदनीय कर्मों की उदीरणा मनुष्यायु में ही हो जाती है। इस कारण कभी-कभी प्रत्यक्ष में ऐसे दारुण प्रसंग उपस्थित हो जाते हैं जो हृदय को उद्वेलित कर देते हैं।

'मेरी आँखों की रोशनी; 'देवता तुल्य पति'; भाईश्री के अतरंग मानवीय गुणों का प्रेरक चित्रण है। जीवन साथी के प्रति सहयोग, सद्भाव, सहानुभूति, करूणा और त्याग का उत्कृष्ट आदर्श है। अन्य सभी आलेख, स्तम्भ पूर्ववत स्तरीय हैं। सम्पादकीय श्रम सार्थक हुआ है। भाई श्री रमाकान्त जी की स्वर्गस्थ आत्मा के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। बड़े भाई के रूप में आपने जो व्यवहार मार्गदर्शन और सम्बल श्री रमाकान्त जी को दिया, उससे सभी बड़े भाई प्रेरणा लें, यही भावना है।

-डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

श्री रमा कान्त जैन अत्यन्त निर्भीक और सुयोग्य पत्रकार थे। जैन धर्म एवं दर्शन के परम विद्वान, समाजसेवी, साहित्यकार और श्रेष्ठ जीवन मूल्यों में आस्थावान व्यक्तित्व के जाने से साहित्य और समाज की जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है। दिवंगत आत्मा को भावपूर्ण विनम्र श्रद्धांजलि।

- डॉ. विदुषी भारद्वाज, बिजनौर

शोधादर्श-६८ का अंक श्री रमा कान्त जैन स्मृति अंक के रूप में देखकर हतप्रभ रह गया। दुःखी होना स्वाभाविक ही है। अचानक वे इस रूप में चले जाएंगे यह अनुमान भी नहीं था, किंतु विधि का विधान बड़ा ही विचित्र है।

भाई रमा कान्त जी सहृदय एवं कर्मठ व्यक्तित्व के धनी थे। अकस्मात् उक्त कर्मठ व्यक्ति का चले जाना एक अपूरणीय क्षति है। उनसे काफी समय पूर्व सम्पर्क हुआ था और उनका औदार्य पूर्ण व्यवहार निरन्तर प्राप्त होता रहा।

-श्री वेदप्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर

इस स्मृति अंक में स्व० रमा कान्त जी का सरल, सहज और आडम्बरहीन व्यक्तित्व पूरी तरह उभर कर आया है। उनके परिवार के सदस्य जिस रूप में उन्हें मानते-समझते थे, ठीक वही धारणा दूसरों के मन में भी बैठी हुई थी। पारदर्शी एवं उदान्त चरित्र का यह सबसे बड़ा साक्ष्य है।

- डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी, लखनऊ

शोधादर्श के ६८ अंक से पता चला श्री भाई रमा कान्त के हमें छोड़कर जाने का। जो कष्ट भोगना था, भोग लिया शरीर त्यागने से पहले। कष्ट तो होता है जब अपना कोई भी जाये। यह सांत्वना देना कार्य होता है कि क्या करे। मुझे भी पढ़कर झटका लगा। लेकिन बस नार्मल हो गया। हम सभी को जाना है। दुखी होने से क्या कोई रुक गया जाने से ? नहीं !

- श्री साहू शैलेन्द्रकुमार जैन, एडवोकेट, खुरजा

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1. प्रो. के. डी. मिश्रीकोटकर,
धर्म लक्ष्मी, उदय कालोनी,
चांडुर बाजार– 444 704
(जिला अमरावती, महा.)

2. डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, आन. निदेशक,
शारदाबेन चिमनभाई
एजूकेशनल रिसर्च सेन्टर,
104, सराप बिल्डिंग, आश्रम रोड,
अहमदाबाद–380009

3. श्री प्रद्युम्न श्री महाराज
द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया,
अजन्ता प्रिन्टर्स, 12–बी,
सत्तार तालुका सोसाइटी,
नवजीवन, अहमदाबाद–380 007

4. श्री ललित सी, शाह,
जैन इन्टरनेशनल,
21, सौम्या अपार्टमेन्ट्स,
अहमदाबाद– 380014

5. श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा,
बी–1/209, प्रोफेसर कॉलोनी,
हरी पर्वत, आगरा–282002

6. श्री चक्रेश जैन,
54, गिरधर नगर
(तिलक नंगर के निकट),
इन्दौर– 452018 (म.प्र.)

7. श्री भरत कुमार मोदी
मधु मिलन इण्डस्ट्रीज लि., आशा भवन,
5, साउथ तुकोगंज, इन्दौर–452001

8. मुनि श्री विमल सागर जी,
द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरणजी,
44–डी, पंचवटी,
उदयपुर– 313001

9. श्रीमती राजदुलारी जैन
द्वारा–श्री नेमीचंद्र जैन,
क्लासिक अपार्टमेन्ट फेज–सेकण्ड,
प्लैट नं. 5, 113/4, स्वरूपनगर,
कानपुर–208002

10. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन,
फ्लैट नं. 107, अमन क्लासिक,
प्लॉट नं. 22, सेक्टर 4, वैशाली,
गाजियावाद–210010

11. श्री के. एस. पुरोहित,
लाइब्रेरियन, कैलाश सागर सूरि
ज्ञान मन्दिर, महावीर जैन आराधना
केन्द्र, कोबा, गांधीनगर– 382 009

12. श्री जितेन्द्र प्रकाश अग्रवाल
सी–47, एफ.सी.आई. कालोनी,
गोरखपुर–273007

13. श्रीमती सितारा जैन
द्वारा–श्री चक्रेश जैन,
1, देवयानी काम्पलेक्स,
गढा रोड, जयनगर, जबलपुर–482 002

14. जस्टिस एम. एल. जैन,
बी. 31, विजयपथ,
तिलकनगर, जयपुर–302004

15. श्री विवेक काला,
जरनल हाउस, ए–95, जनता कालोनी,
जयपुर– 302004

16. श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका,
1136, महावीर पार्क, मनिहारों का रास्ता,
जयपुर– 302003

17. श्री ब्र0 जय निशान्त,
पुष्प भवन,
टीकमगढ़–472001 (म0प्र0)

18. श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया,
कुन्दकुन्द नगर,
पोस्ट–सोनागिर–475686
(जिला दतिया म. प्र.)
19. श्री प्रवीन कुमार जैन,
मेसर्स बिशम्भर दास महावीर प्रसाद जैन,
7/36–ए, अन्सारी मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली–110002
20. श्री रूपचन्द जैन कटारिया,
37–ए/2, राजपुरा रोड,
नई दिल्ली– 110001
21. श्री श्रीकिशोर जैन एवं
श्री शरद कुमार जैन
सम्पादक–सांध्य लक्ष्मी,
96/1, रशीद मार्केट, दिल्ली–110051
22. श्री सतीश कुमार जैन
सी–3/3129, वसंत कुंज,
नई दिल्ली–110070
23. डॉ0 (श्रीमती) कुसुम पटोरिया,
आजाद चौक, सदर,
नागपुर–440001
24. श्री ब्र0 सन्दीप सरल,
श्री सरल ग्रन्थालय,
(अनेकान्त ज्ञान मन्दिर), छोटी बजरिया,
बीना–470113 (म. प्र.)
25. श्री सुरेश चन्द्र जैन,
मेसर्स परमानन्द एण्ड सन्स,
नोकेन, दि माल, **मसूरी–248179**
26. श्री मुकेश जैन, एडवोकेट
15, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर– 251002
27. श्री वेद प्रकाश गर्ग,
14, खटीकान, **मुज़फ्फरनगर–251002**
28. श्री अवनीश गर्ग. जैन
एवं श्रीमती रेखा गर्ग, अग्रवाल बिल्डिंग,
मकबरा रोड, हजरतगंज,
लखनऊ– 226 001
29. डॉ0 (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी,
यूनीवर्सिटी टीचर्स फ्लैट्स,
डी–2, गोकरननाथ रोड,
लखनऊ– 226007,
30. श्री किशोर चन्द्र जैन
जैन फर्नीचर, दुर्गापुरी,
लखनऊ– 226004
31. डॉ. आर. के. अग्रवाल,
सी–245, साउथ सिटी,
लखनऊ– 226 012
32. डॉ. एस. के. जैन
आत्मज वैद्य चन्द्र कुमार जैन,
110/64, नया गांव,
माडल हाउस, लखनऊ–226018
33. श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री
ऐशबाग रोड, नाका हिंडोला,
लखनऊ–226004
34. श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा,
सी–16, के–पार्क, महानगर एक्सटेन्शन,
लखनऊ–226006
35. मुनि श्री प्रमाण सागर जी,
द्वारा – श्री सन्तोष कुमार जयकुमार,
कटरा बाजार,
सागर – 470002
36. श्री कमल सिंह रामपुरिया,
'रामपुरिया मेन्शन्स',
17/3, मुखराम कनौडिया रोड,
हावड़ा–711 101

शोधादर्श के वार्षिक अभिदाता - वर्ष २००९

1. डॉ. प्रदीप कुमार जैन
मेहरून कलां– 305 405
तहसील केकड़ी, अजमेर (राज.)
2. श्री तुलाराम जैन
किला रोड, अम्बाह–476111
3. पुस्तकालयाध्यक्ष,
गुजरात विश्वविद्यालय,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद–380009
4. श्री रंजीत सुन्दर दास जैन,
महाजन टोली नं.–1, आरा–802301
5. डीन, कालेज आफ सोशल स्टडीज
एण्ड ह्यूमैनिटीज,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,
उदयपुर–313001
6. श्री कैलाश नारायण टण्डन
117/एच–2/56, पाण्डुनगर,
कानपुर– 208005
7. श्री उमेश कुमार जैन
222/सी/2, आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र रोड,
कोलकाता–700 004
8. डॉ. इन्दर राज बैद
नारायण अपार्टमेंट (ए), नं. 14
स्ट्रीट 10, नंगनल्लुर, चेन्नई –600061
9. अपभ्रंश साहित्य अकादमी संयोजक,
जैन विद्या संस्थान समिति,
दिगम्बर जैन भट्टारकजी की नसियां,
सवाई राम सिंह रोड, जयपुर–302004
10. डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी
'अविरल' 54–55, इन्दिरा विहार,
सेक्टर–7, एक्सटेन्शान, न्यू पावर हाउस
रोड, जोधपुर–342003
11. श्री सिरेमल जैन
129, अजीत कालोनी,
रातावाड़ा, जोधपुर–242006 (राज.)
12. श्री अजित जैन 'जलज'
बड़ागांव (धसान)–472010
जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)
13. पंडित लक्ष्मीचंद जैन
अशोका इलेक्ट्रानिक्स, माधु गामड़ा रोड,
डूंगरपुर (राज.) 314001
14. श्री जयकुमार उपाध्ये
ई–42, दूसरा तल,
पी. वी. आर. सिनेमा के पास
साकेत, नई दिल्ली –110017
15. सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष,
श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया,
कटवरिया सराय,
नई दिल्ली–110 016
16. नागपुर विश्वविद्यालय
द्वारा अलाइड पब्लिशर्स,
60, बजाज नगर
सेंट्रल बाजार रोड, नागपुर– 440010
17. डॉ. (सौ.) हेमलता जोहरापुरकर
57, नंदनवन कालोनी,
नागपुर–440 009
18. श्री पवन कुमार जैन
1–101, वंडर सिटी
कटराज, देहु रोड,
बाईपास हाइवे, कटराज,
पुणे– 411 046
19. श्री अनूप चन्द जैन, एडवोकेट
234/1, जैन कटरा,
फिरोजाबाद– 283203
20. श्रीमती इन्दु कान्त जैन
बंसी कुटी, गुबरैला स्ट्रीट,
21, दुली मोहल्ला,
फिरोजाबाद–283 203
21. डॉ. (श्रीमती) उषा जैन
पारिजात, कोतवाली के सामने,
सिविल लाइन्स, बिजनौर– 246 701

22. श्री मनसुखलाल कटारिया
कटारिया हाउस, एच – 53,
2, मेन रोड, नगप्पा ब्लाक
बंगलुरु– 560021
23. श्री शीतल प्रसाद जैन
'अलका', 35, इमामबाड़ा,
मुफ्जफरनगर –251007
24. श्री दर्शन लाड,
सम्यक्दर्शन्, बी– 27/75,
सुन्दर नगर कालोनी, मुम्बई– 400098
25. श्री संजय किशोर जैन
प्रधानाचार्य, राजकीय आई.टी.आई.
काठ रोड,
मुरादाबाद (उ.प्र.)– 244001
26. श्री जय प्रकाश जैन एडवोकेट
99, मानसरोवर, गली नं.–1
सिविल लाइन्स, मेरठ– 250002
27. श्री धन प्रकाश जैन
107, फेज – 2, मयूर बिहार,
मेरठ – 250001
28. डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा,
पुस्तकालयाध्यक्ष
बी. एस. एम. (पी.जी.) कालेज,
रुड़की– 247667 (हरिद्वार)
29. श्री अखिलेश कुमार जैन,
श्रीमन्दरदास जैन एण्ड सन्स,
चन्द्रभवन, चारबाग,
लखनऊ– 226004
30. श्री पारस सुधीर शहा
दूसरी मंजिल, 3–ए, धवलगिरि,
430, शनिवार पेठ, पुलिस स्टेशन के सामने,
पुणे–411 030 (महा.)
31. श्रीमती अनीता जैन,
चन्द्रभवन, चारबाग, लखनऊ–226004
32. श्री दिनेशचन्द्र जैन
एवं श्रीमती शिखा जैन
369, मोतीनगर, लखनऊ–226 004
33. श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास'
C/o नरेन्द्र जैन क्लाथ हाउस,
23, मोहन मार्केट, दूसरी गली,
अमीनाबाद, लखनऊ– 226018
34. प्राचार्य, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,
विशाल खंड– 4,
गोमती नगर, लखनऊ–10
35. श्री विनय कुमार जैन
160/51, काशी डेरा,
मशकगंज, श्री गीता ट्रेडिंग,
लखनऊ–226003
36. डॉ. कु. निर्मला शुक्ला
द्वारा श्री श्याम बिहारी शुक्ला,
टाइप IV/B, केन्द्राचल कालोनी,
अलीगंज, लखनऊ– 24
37. श्री सुरेश कुमार जैन
9/1002, इन्दिरानगर,
ईश्वरधाम मन्दिर के पास,
लखनऊ– 16
38. श्री मूलचन्द गुलाबचन्द जैन बड़जाते,
तिलक चौक, सर्राफ लाइन,
वर्धा– 442001 (महाराष्ट्र)
39. डॉ. शिव प्रसाद,
द्वारा–मनीष जनरल स्टोर्स,
चौक, रामनगर, वाराणसी–221008
40. श्री आदिश्वर प्रसाद जैन,
मुकुल गारमेन्टस, वैशाली मार्केट,
सिकन्दराबाद
जिला–बुलन्दशहर)–202305
41. श्री महेश चन्द्र जैन,
सिद्धार्थ गिफ्ट सेन्टर,
39, कसरीवाड़ा, पो. सिकन्दराबाद
जिला– बुलन्दशहर (उ. प्र.) –202305
42. श्री इन्दर कुमार सतिया
द्वारा ओम शान्ति पेपर्स,
प्रथम तल, कामडोली गली,
हुबली– 580028

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

प्रबन्ध समिति

(१ जनवरी २०१० को सर्वसम्मति से निर्वाचित)

अध्यक्ष	श्री लूण करण नाहर जैन
उपाध्यक्ष	श्री नरेश चन्द्र जैन
महामंत्री	श्री नलिन कान्त जैन
संयुक्त मंत्री	डॉ. विनय कुमार जैन
उपमंत्री	श्री महेन्द्र प्रसाद जैन, श्री रोशनलाल नाहर
कोषाध्यक्ष	श्री बिजय लाल जैन
सदस्य प्रबन्ध समिति	डॉ. शशि कान्त, श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री आदित्य जैन, श्री दीपक जैन, श्री अजय कुमार जैन कागजी, श्री अंशु जैन 'अमर' श्री राकेश कुमार जैन, श्री हंसराज जैन

प्रकाशन

भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ	सं. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	50/–
Bhagwan Mahavira: Life, Times & Teachinigs	**by Dr. Jyoti Prasad Jain**	**5/-**
Way to Health & Happiness - Vegetarianism	**by Dr. Jyoti Prasad Jain**	**4/-**
Mysteries of Life & Eternal Bliss	**by Prof. Anant Prasad Jain**	**7/50**
जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य	लेखक प्रो. अनन्त प्रसाद जैन	7/50

पांचों प्रकाशन मात्र रु. 70/– में प्राप्त किये जा सकते हैं। मूल्य लखनऊ में देय चेक या ड्राफ्ट द्वारा 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम महामंत्री को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004 के पते पर भेजा जाय।

छात्रवृत्ति

आवेदन पत्र के फार्म 31 जुलाई 2010 तक प्राप्त कर लिये जायें। आवेदन पत्र भरकर 30 सितम्बर तक भेजना अनिवार्य है।

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क ६० रु. (साठ रुपये), 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क २५ डालर है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिये। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक